THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176729
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H928.9143 T83K Accession No. H2884

Author त्रिपाठी, सूर्यकान्त 'निराला'.

Title कुल्लीभाट. से 2018.

This book should be returned on or before the date last marked below.

लेखक की अन्य रचनाएँ

अप्सरा	(उपन्यास)	४.००
अलका	(„)	३.७५
लिली	(कहानी-संग्रह)	२.५०
परिमल	(काव्य-संग्रह)	४.५०
पंत और पल्लव	(आलोचना)	१ २५
प्रबंध-पद्म	(निबंध)	३.००
महाभारत	(धार्मिक)	८.००

कुल्ली भाट

[हास्य-रस-पूर्ण चरितोपन्यास]

लेखक
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

पंचमावृत्ति : सं० २०१८ वि०
मूल्य : रु० २.५० न०पै०

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिंदी-साहित्य में नहीं मिला, यद्यपि कुल्लो के गुण बहुतों में हैं, पर गुण के प्रकाश से सब घबराए। इसलिये समर्पण स्थगित रखता हूँ।

—'निराला'

भूमिका

प० पथवारीदीनजी भट्ट (कुल्ली भाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। रूढ़िवादियो के लिये यह दोष है, पर साहित्यिको के लिये, विशेषता मिलन पर, गुण होगा। मैं केवल गुण-ग्राहकों का भक्त हूं।

कुल्ली सबसे पहले मनुष्य थे, ऐसे मनुष्य, जिनका मनुष्य की दृष्टि मे बराबर आदर रहेगा। सरस्वती-सपादक प० देवीदत्तजी शुक्ल ने, पूछने पर, कहा, कुल्ली मेरे बड़े भाई के मित्र थे। अस्तु, जहाँ शुक्लजी की मित्रता का उल्लेख है, वहाँ पाठक समझने की कृपा करें कि कुल्ली शुक्लजी के मित्र नही, बड़े भाई-जैसे थे।

पुस्तिका मे हास्य-रस की प्रधानता है, इसलिये कोई नाराज होकर अपनी कमजोरी न साबित करें, उनसे प्रार्थना है।

लखनऊ —'निराला'

१०।५।३९

एक

बहुत दिनों की इच्छा—एक जीवन-चरित लिखूं, अभी तक पूरी नही हुई; चरितनायक नही मिल रहा था, ठीक जिसके चरित मे नायकत्व प्रधान हो। बहुत आगे पीछे, दाएँ-बाएँ देखा। कितने जीवन-चरित पढे, सबमे जीवन से चरित ज्यादा; भारत के कई महापुरुषों के पढे—स्वहस्त-लिखित, भारत पराधीन है, चरित बोलते हैं। बहुत दिनो की समझ—सत्य कमजोरी है, शहजोरी उसकी प्रतिक्रिया; अगर चरित मे अँधेरा छिपा, प्रकाश आँखो मे चकाचौंध पैदा करता है, जो किसी तरह भी देखना नही—जड पकड गई।

याद आया, कही पढा था—बबई के सिनेमा-स्टारो की सर्र से दीवार चढने की करामात देखकर—रँगे कृत्य मे आए—सत्य से अज्ञ—बाहर के किसी प्रेमी कार्यकर्ता ने कमर तोड ली है। बडी खुशी हुई। साफ देखा—क़लम हाथ लेते ही कितने कवियो की आँख की परी विश्व-साहित्य के सातवे आसमान पर पर मारती है, कितने

कर्मवीर दलिया खाते हुए, कमर कमान किए, जान पर खेल रहे हैं, कितने आधुनिक बेधडक समाजवाद के नाम से पूरे उत्तानपाद।

इसी समय तुलसीदास की याद आई, जिन्होने लिखा है—

"जो अपने अवगुन सब कहऊँ, बाढ़ै कथा, पार ना लहऊँ ;
ताते मै अति अलप बखाने, थोरे महँ जानिहै सयाने।"

सोचा, तुलसीदास ने सिर्फ सयानो की आँख फैलाई है, यानी महापुरुषो को नही। वह स्वय भी महापुरुष नही थे, आधुनिक विद्वानो का मत है। कहते है, जवानी के श्रीगणेश से, यानी अच्छी तरह होश आने से, उम्र के सौ साल बाद—अच्छी तरह होश जाने तक उनमे पुरुषत्व ही प्रधान रहा।

मुझसे कवि भगवतीचरण कहते थे—कविवर रामनरेश त्रिपाठी जानते है, बहुत आधुनिक रिसर्च है—तुलसीदासजी गर्मी से मरे थे; यह पता नही चला—गर्मी रत्नावली से मिली—कहाँ से; बाहुक की रचना के वक्त बाँह का दर्द गर्मी के कारण हुआ। कुछ हो, मैं ऐतिहासिक नही, समझा कि तुलसीदासजी पुरुष थे, महापुरुष नही; महापुरुष अकबर था—दीन-ए-इलाही चलाया, हर कौम की बेटी ब्याही, चेले बनाए।

अपने राम के लकडदादा के लकडदादा के लकडदादा राजा वीरबल त्रिपाठी अकबर के चेले थे; अपनी बेटी खाले के वाजपेयियों के घर ब्याही ; तब से वाजपेयी-वश मे भी महापुरुषत्व का असर है, यो ट्रिपल लकडदादा का प्रभाव कुल कनवजिया कुलीनो पर पडा। खैर, 'महापुरुष' 'पुरुष' का बढा हुआ रँगा हिस्सा लेकर है, उसी तरह उसके 'चरित' मे एक 'सत्' और जुड गया है। साहित्यिक की निगाह मे यह साबुन का उपयोगितावाद है, अर्थात् सिर्फ़ साफ़ होता है, वह भी कपड़ा, रास्ता, घर या दिमाग नही। अगर

'वाद' लें, जैसे समाजवाद पैर बढाए है, तो वह भी अकेला साहित्य नही ठहरता। साहित्य पुरुष का एक रोयाँ सिद्ध होता है।

मैं तलाश मे था कि ऐसा जीवन मिले, जिससे पाठक चरितार्थ हो, इसी समय कुल्ली भाट मरे।

दो

जीवन-चरित जैसे आदमियो के बने और विगडे, कुल्ली भाट ऐसे आदमी न थे। उनके जीवन का महत्त्व समझे, ऐसा अब तक ही पुरुष ससार मे आया है, पर दुर्भाग्य से अव वह ससार मे रहा नही—गोर्की। पर गोर्की मे भी एक कमजोरी थी; वह जीवन को मुद्रा को जितना देखता था, खास जीवन को नही। वादी-विवादी था। हिंदी मे कोई है हिंदी-भाषी ? किसी महापुरुष को जबान से कहा जा सकता है—'नही'।

मैं हिंदी के पाठको को भरसक चरितार्थ करूँगा, पर कुल्ली भाट के भूगोल मे केवल ज़िला रायबरेली था स्थल, बाकी जल। एक बार लाचारी अस्र अयोध्या तक गए, जैसे किसी टापू मे यान, रेल। यों ज़िंदगी-भर अपने वतन डलमऊ मे रहे। लेकिन, ज़िंदगी के बाद—जितने जानता हूँ, नाम-मात्र से लेकर पूरे परिचय तक—उनसे नही छूटे। गड़ही के किनारे कबीर को महासागर कैसे दिखा, मैं समझा।

बडा आदमी कुल्ली को कोई नही मिला, जिसे मित्र समझकर गर्दन उठाते, एक 'सरस्वती'-सपादक प० देवीदत्त शुक्ल को छोड़कर; लेकिन शुक्लजी का बडप्पन जब उन्हे मालूम हुआ, तब मरने के छ महीने रह गए थे, मुझी से सुना था ।

सुनकर गर्दन उठाई थी, साँस भरी थी, और कहा था—"वह मेरे लँगोटिया यार है। हम मदरसे मे साथ पढे हैं।"

मुझे हँसता देख फिर छोटे पडे, पूछा—"देवीदत्त बडे आदमी हैं?"

मैंने कहा—"आपको मदरसे की याद आ रही है। जिस पत्रिका के आचार्य प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी सपादक थे, उसके अब शुक्लजी हैं।"

न-जाने क्यो, कुल्ली को फिर भी विश्वास न हुआ। मैं सोच रहा था, या तो कुल्ली मदरसे मे शुक्लजी से तगड़े पडते थे; या—याद आया, शुक्लजी का बैसवाड़े के कवि कठाग्र है कुल्ली की दोस्ती के कारण। कुल्ली गुरु स्थान पर है। मुझे भी उन्होने कुली (एक दाँव) पर चढाया था, नर हरि, हरिनाथ,ठाकुर, भवन आदि—मालूम नही—कितने कवि गिनाए थे अपने वश के। मुमकिन है, इसलिये भी कि धाक जमाने मे मुझे कामयाबी न होगी, यह मैं बीस साल से जानता हूँ। अलावा मेरी दृष्टि का अप्रतिष्ठा-दोष कर दे। पर कुल्ली को मालूम न था कि मैं कविता तो लिखता हूँ, पर कवि दूसरे को मानता हूँ। कुल्ली की शुक्लजी के प्रति हुई मनोदशा देखकर मैने कहा—"जब आप मुझे इतना... तब शुक्लजी तो.... मै तो उनके चरणो तक ही पहुँचता हूँ।"

सुनकर कुल्ली बहुत खुश हुए, जैसे स्वय शुक्लजी हो, बड़प्पन आ गया, स्नेह की दष्टि से देखते हुए बोले—"हाँ, करते की त्रिया है, जब आप गौने के साल आए थे, क्या थे?" कहकर कुछ झेपे।

झेंपने के साथ उनके मनोभाव कुल हाल बेतार के तार से मुझे समझा गए। पच्चीस साल पहले की घटना, जो उस समय समझ में न आई थी, पल-मात्र मे आ गई। सारे चित्र घूम गए, और उनका रहस्य समझा। वहीं कुल्ली से पहली मुलाक़ात है, वहीं से श्रीगणेश करता हूँ।

★

ती
न

मैंने सोलहवाँ साल पार किया, पूरा जीवन जी० पी० श्रीवास्तव के कथनानुसार। जी० पी० श्रीवास्तव ही नहीं, जितने गाँव-घर-टोला-पड़ोस के थे, यही कहते थे।

याद है, एक दिन पं० रामगुलाम ने पिताजी से कहा था—"लडके का कठ फूट आया, बगलें निकल आईं, मसें भीगने लगी, अब बबुआ नहीं है, गौना कर दो; हो भी तो हाथी गया है, लड़ता है, सुनते हैं।"

"हाँ।" कहकर पिताजी चिंता-मग्न हो गए थे।

इसी तरह, जब गौना लेने गए, श्रीमतीजी तेरहवाँ पार कर चुकी थी—कुछ दिन हुए थे, उनकी किसी नानी ने कहा था उनकी अम्मा से—मैं वहीं था—हम दोनो की गाँठ जोडकर कौन एक पूजा को जा रही थी—मदनदेव की अवश्य नहीं थी। उन्होने कहा था—"दामाद जवान, बिटिया जवान; परदेश ले जाते हैं, तो ले जाने दो।"

गौना हुआ। बड़ी बिपत। गाँव में प्लेग। लोग बाग़ो में पड़े।

हमारा एक बाग गाँव के क़रीब है। प्लेग का अड्डा होता है—लोग वहाँ झोपडे डालते है। हम लोग बंगाल से आए, उसी दिन लोग निकलने लगे। आखिर एक महुए के नीचे दो झोपड़े डलवाकर पिताजी मुझे और कुछ भैयाचार-नातेदारो को लेकर गौना लेने चले।

जेठ के दिन। इससे पहले यू० पी० की लू नही खाई थी। खैर, गौना हुआ, और एक झोपडे मे एक रात हम लोग कैद किए गए। जो बाते नही सोची थी, श्रीमतीजी के स्पर्श-मात्र से वे मस्तिष्क में आने लगी। प्रौढता के अत तक उनसे अधिक प्रौढ बाते नही आतीं, मैं नवयुवको को विश्वास दिलाता हूँ। खैर, हम पूरे जवान हैं, हम दोनो समझे।

पाँचवे दिन ससुरजी बिदा कराने आए। ससुरजी इसलिये भी आए कि गाँव का पानी नही पिएँगे, शाम तक बिदा करा ले जायँगे। पिताजी को बहुत बुरा लगा। वह बंगाल से उतना रुपया खर्च करके आए थे। पाँच दिन के लिये नही। ससुरजी सुबह की गाडी से आए थे। मैं रात का जगा, सो रहा था। बातचीत नही सुनी; बाद को गाँव के एक भैया से सुनी। मेरी जब आँख खुली, तब ससुरजी अपनी लडकी को बिदा कराके ले गए थे। सुना, प्लेग के भय से वह लडकी को बिदा कराने आए थे।

पिताजी ने इस पर बहुत फटकारा, कहा, यह भय हमारे लडके के लिये आपको नही हुआ? अगर ऐसे आपके मनोभाव है, तो हम दूसरा विवाह कर लेगे।

पिताजी के तर्क-पूर्ण कथन का, मुमकिन ससुरजी पर प्रभाव पड़ता, लेकिन ससुरजी थे बहरे। वह अपनी कहते थे, और देख रहे थे कि बिदाई की तैयारी हो रही है या नही। उधर ससुरजी की पुत्री अपने पिता और ससुर के कथोपकथन को एकनिष्ठ होकर सुन

रही थी। पिताजी पुत्र की दूसरी शादी कर लेंगे, प्रभाव अनुमेय है। झल्लाहट में पिताजी ने बिदा कर दिया, और स्टेशन पहुँचा देने को बहल बुला दी।

दूसरे दिन नाई आया सासुजी की लंबी चिट्ठी लेकर। 'क्षमा' शब्द का अतिशय प्रयोग। ससुरजी कम सुनते हैं, आज्ञा-पालन में त्रुटि हुई। बुलाया। 'गवही' पहले नहीं ली, अब ले लें। बड़ी दीनता! यह भी लिखा था—"मेरी दो दाँत की लड़की, उसके सामने दूसरे विवाह की बात!"

पिताजी पिघले, मुझसे बोले—"ससुरार जाव। लेकिन यहाँ से तिगुना खाना।"

मैंने कहा—"घी और बादाम तिगुने करा लूँगा। बेदाना तो वहाँ मिलते नहीं, अन्यथा शरबत में तीन रुपए लग जाते रोज।"

पिताजी ने कहा—"रूह, रूह का मालिश करना रोज, होश दुरुस्त हो जायँगे!"

शाम चार बजेवाली गाड़ी से चलने की तैयारी हो गई। दुपहर ढलते नौकर बिस्तर-बॉक्स लेकर भेज दिया गया। मैं पिताजी के उपदेश धारण कर ढाई बजे के करीब रवना हुआ। ठाट बंगाली; धोती, शर्ट, जूता, छाता। आँख में भी बंगाल का पानी, बाकी देश जंगल या रेगिस्तान दिखते थे।

बंगालियों की तरह मैं भी मानता था, आर्य बंगाल पहुँचकर सही मानी में सभ्य हुए, विशेषतः अँगरेजों के आने के बाद से। महुए की छाँह और तर किए झापड़े के अंदर यू० पी० की गर्मी का हिसाब न लगता था। बाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोंका आया कि एक साथ कुंडलिनी जैसे जग गई, जैसे वर पुत्र पर पड़ी सरस्वती की कृपा-दृष्टि की तारीफ़ में रवि बाबू ने लिखा है—

"एके बारे सकल पर्दे घुचिए दाओ तारे"।

(एक साथ ही उसके कुल पर्दे हटा देते हो।) वह प्रकाश दिखा कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है; रवि बाबू को आराम-कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड पर, मुझे गलियारे मे, लू विरोध करती हुई कह रही थी—"अब ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।"

फिर भी पैर पंछे नही पडे; बंगाल की वीरता और प्रेमाशक्ति बँक कर रही थी। पैर उठाकर सामने रखते ही, लीक के खड्ढ मे डेढ हाथ खाले गया, और मैं 'गुडीगुडता' के डडे की तरह गुडा; लेकिन स्पोर्टस् मैन था, झडबेर को झाडी तक पहुँचते-पहुँचते अड गया। देह गर्दबर्द हो गई। मुँह मे क्रोम लग गया था, घाव पर जैसे आयडोफार्म पडा।

लेकिन धन्यवाद है सूरदास को, मुझे लज्जित होने से बचा लिया: कलकत्ते से 'बिल्वमगल'-नाटक देखकर आया था—दूसरी जीवनियाँ भी पढी थी, लाश पकडकर नदी पार करने और साँप को पूँछ पकडकर मज़िल चढने के मुकाबले यह अति तुच्छ था, फिर वहाँ वेश्या, यहाँ धर्मपत्नी। आगे बढा। एक झोंका और आया, मालूम हुआ, इस देश मे धूप से हवा मे गर्मी ज्यादा है। फिर भी हवा के प्रतिकूल चलना ही होगा। कालिदास को पढ रहा था, याद आया—"अजयदेकरथेन स मोदिनीम;" कडाई से पैर आगे बढाया, ठकाका जूते ने काँकर से धोके से ठोकर ली, और मुँह फैला दिया। सोचा, बॉक्स मे एक जोडा और है नया। तसल्ली हुई, फिर आगे बढा। एक झोका और आया। अब के छाता उलटकर दूसरी तरफ़ तना। हवा के रुख पर करके, सुधारकर तोड लिया।

आगे लोन-नदी आई, जो आठ महीने सूखी रहती है, और जिसके

किनारे संसार के आधे बेर-बबूल हैं; शायद इसी कारण इस प्रांत का नाम कभी बनौधा था—"बारह कुँवर बनौधे केर।" स्वतन्त्रता-प्रेम भी अधिक था; क्योंकि छोटी सी जगह मे बारह कुँवर थे। धोती कोछेदार बगाली पहनी थी। एक जगह उड़ी, और, बेर की बाँहो से आलिंगन किया, न अब छोड़े, न तब; -"गुनो से खार बेहतर है, जो दामन थाम लेते है;" याद तो आया, पर बड़ा गुस्सा लगा। सैकडो काँटे चुभे हुए। धोती छप्पनछुरी हो रही थी। छुड़ाते नही बनता था। देर हो रही थी। आखिर मुट्ठी मे कोछे को पकडकर खींचा। धोती मे सहस्रधार गगा बन गई, उधर बेर सहस्र विजय-ध्वज।

धोती कीमती थी;—शांतिपुरी, खास ससुराल के लिये ली गई थी, जैसे प्रसिद्ध लेखक खास पत्र के लिये लेख लिखते है। सान्त्वना हुई कि कई और है। नदी-गर्भ से ऊपर आया। कुछ दूर पर बेहटा-श्मशान मिला। दो ही मील पर देखा, दुर्दशा हो गई है, जैसे धूल का समंदर नहाकर निकला हूं। स्टेशन मील-भर रह गया था, गाड़ी का अर्राटा सुन पड़ा। अपने आप पैर दौडने लगे। मन ने बहुत कहा, बड़ी अभद्रता है। लेकिन जैसे पैरो के भी जबान लग गई हो, बोले—"अभी भद्रता कुछ बाकी भी रह गई है? घर लौटकर जाओगे, जिंदगी-भर गाँववाले हँसेंगे—बाबू बनकर ससुराल चले थे। हजार-हजार सपाटे का उठान तो देखो।" कहते पैर बेतहाशा उठ रहे थे। छाता बगल मे। हाथ मे जूते। सामने मील-भर का ऊसर। चार बजे की चटकती धूप। स्टेशन देख पडने लगा। गाडी प्लेटफार्म पर आ गई। दौड तेज हुई। लबा मैदान। गाडी पानी ले रही है। अभी छ फर्लांग और है। भूभुल मे पैर जले जा रहे है, लेकिन रफ्तार धीमी नही, बढाई भी नही जा सकती, कलेजा मुँह

को आता हुआ। एंजिन पानी ले चुका, लौट रहा है, अभी चार फ़र्लांग है और तेज़ हो—नहीं हो सकते। बदन लत्ता। जान पड़ता है, गिर जाऊँगा।

इसी समय नौकर चंद्रिकाप्रसाद टोढ़ी उठाकर रास्ते की तरफ़ देखता हुआ देख पड़ा। चंद्रिका के दूध के दाँत उखड़ने के बाद सामने के अन्नवाले नहीं जमे, इसलिये लोग 'गिपुला' कहते हैं। हैरान होकर असंबद्ध होंठों से—ठोढ़ी उठाए, एकदृष्टि—प्रतीक्षा करते देखकर मुझे नई जान मिली, देखकर चंद्रिका भी सजीव हुआ। टिकट कटा लिए थे, गनीमत हुई। मैं पहुँचा। चंद्रिका हँसा फिर सामान चढ़ाने लगा। स्टेशन में एक प्लेटफ़ार्म है, उस तरफ़ उधर गाड़ी लगी हुई, मुझे न आता देख चंद्रिका उतरकर इधर चला आया था। इधर से ही चढ़े। भीतर जाने के साथ इतनी गर्मी मालूम दी कि जान पर आ बनी। चंद्रिका न होता, तो न-जाने क्या होता। वह अँगोछे से हवा करने लगा। कुछ देर में होश दुरुस्त हुए। गाड़ी चली। ठंडे होकर कपड़े बदले।

पाँचवाँ स्टेशन डलमऊ है। उतरा, तब सूरज छिप चुका था। लेकिन इतना उजाला कि अच्छी तरह मुँह दिखे। चंद्रिका ने सामान उठाया। चले। गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था बना-चुना, बिलकुल लखनऊ-ठाट, जिसे बंगाली देखते ही गुंडा कहेगा। तेल से जुल्फ़ें तर, जैसे 'अमीनाबाद' से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गली, सिर के दाहने किनारे रक्खी। ऐंठी मूँछें। दाढ़ी चिकनी। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की बलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फ़ैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चास के साल-दो साल इधर-उधर। देखने पर

अंदाजा लगाना मुश्किल है—हिंदू है या मुसलमान। साँवला रंग। मजे का डीलडौल। साधारण निगाह में तगड़ा और लंबा भी।

टिकट देकर निकलते ही मुझसे पूछा—"कहाँ जाइएगा?"

मैंने कहा—"शेरअंदाजपुर।"

"आइए, हमारा एक्का है," कहकर उसने एक्केवान को पुकारा, और गौर से घूरते हुए पूछा—"किनके यहाँ?"

मैंने अपने ससुरजी का नाम लिया। उसे एक बार देखकर दोबारा नहीं देखा, कारण वह मेरा आदर्श नहीं था, मुझसे दो इंच छोटा था और बदन में भी हल्का।

मैं एक्केवाले के साथ एक्के पर बैठा। चंद्रिका भी था। वह जवान कुछ देर तक पीछा कर देखता रहा, फिर उसी एक्के पर आकर बैठा। चुपचाप बैठा देखता रहा। तब मैं नहीं समझ सका, अब जानता हूँ—वैसी शुभ दृष्टि सुंदरी से-सुंदरी पर पड़ती है, जिसकी बाढ़ का पानी रत्ती-भर नहीं घटा।

चंद्रिका बेवकूफ की तरह उसे, विश्वास की दृष्टि से मुझे रह-रहकर देख लेता था। उस मनुष्य ने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया, केवल अपने भाव में था। मुझे बोलने की कोई आवश्यकता न थी। एक्का चला, कस्बे में आकर मेरे ससुरजी के दरवाजे खड़ा हुआ। वह आदमी चौराहे पर उतर गया था। उतरते एक्केवाले से कुछ कहा था, मैंने सुना नहीं।

जब मैं किराया देने लगा, एक्केवाले ने कहा—"नंबरदार ने मना किया है।"

"हम किसी नंबरदार को नहीं जानते, किराया लेना होगा, पहले कह दिया होता।"

एक्केवाले ने हाथ तो बढ़ाया, लेकिन कहा—"भैया, उन्हें मालूम होगा, तो मेरी नौकरी न रहेगी ।"

मैं समझ गया, पैसे जेब में रक्खेगा। अब ससुराल के लोग आ गए। मैं प्रणाम नमस्कारादि के लिये तैयार हुआ।

★

चा
र

पैर छूकर मैं एक गलीचा-बिछे पलँग पर बैठा, देखा, सासुजी की पलकों पर चिंता की छाया है। मन-ही मन कारण की तलाश करने लगा। इसी समय हृदय के भाव को शब्दो मे प्रकट कर उन्होंने पूछा —"क्यो भैया, तुम कुल्लो के एक्के पर आए हो?"

मैने सोचा, कुल्लो अछूत है। कहा—'आजकल यह सब चला गया है।"

मैंने अपनी समझ से पूरी तरह उनकी शंका मिटा दी, पर सासुजी की निगाह मे त्रिशंकु स्वर्ग से गिरे; मेरे लहराते हुए बंगाली बालों को बड़े संशय से देखने लगी—लहरियों से पुलकित होने की जगह सिहर-सिहर उठने लगी, जैसे उनकी कन्या के भाग्य और सुहाग के लिये धोखे की टट्टी हो। एकाएक मेरी कोंछीदार धोती पर उनकी निगाह गई, तो जैसे शंका को सुगठित प्रमाण मिला। एक ही भाव

मे कुछ देर स्थिर रहकर उन्होने लबी साँस छोड़ी—निष्कर्ष तक पहुँचने की सूचना। फिर धीरे-धीरे भीतर गई।

मै बैठा हुआ, फाटक के भीतर, घर के बाहरवाले आँगन मे लगा चिलवल का पेड देखता रहा। एकाएक खयाल गया, इसकी डाल पर सावन मे झूला पडता होगा, उस पर बैठी हुई भरे आकाश के सजल बादलो को देख देखकर जो सावन, मलार कजरी और बारहमासियाँ गाती हुई पैगो मे झूलती है, उसे मै पहचानता हूँ, उसके कुल गीतो का इधर मैं ही लक्ष्य रहा हूँगा।

इसी समय भीतर से एक नवीना कठ की खिलखिलाहट सुन पड़ी; यद्यपि मैंने यह पहले-ही-पहल सुनी थी, फिर भी पहचानते देर नही हुई—यह किसका है। उसकी ध्वनि मे बड़े गहरे-गहरे अर्थ थे—"तुम मेरे हो, तुम पर मेरा पूरा विश्वास है, तुम्हे पाकर मैं और कुछ भी नही चाहती, दूसरे तुम्हे नही समझते, तो न समझें, मैं किसी को समझाना नही चाहती।"

चद्रिका खुले असबाब पर बैठा आकाश की शोभा देख रहा था। तारे निकल आए थे। भावावेश मे उसने मुझसे पूछा—"अच्छा, बाबा, आसमान मे तारे ज्यादा है या दुनिया मे आदमी ?"

मैंने कहा—"तुझे क्या जान पडता है ?"

चद्रिका कुछ सोच-विचारकर हँसा, कहा—"दुनिया आसमान से छोटी थोड़े ही है ? कहाँ से कहाँ तक है ! आदमी ज्यादा होंगे।"

इसी समय सासुजी शरबत लेकर आईं। उनका नौकर बाहर गया था। आया। सासुजी ने उससे पानी ले आने के लिये कहा। मैंने देखा, सासुजी का चेहरा प्रकाश को भी प्रसन्न कर रहा है। उनकी आत्मजा जैसे उनकी आत्मा में प्रविष्ट हो क्षण-मात्र मे उनकी

शंका निवृत्त कर चुकी है, परिष्कृत स्नेह के स्वर से कहा—"बच्चा, शरबत पी लो।"

मैंने शरबत पिया। सासुजी ने इस बार भी एक साँस छोड़ी, जो मुझे स्निग्ध करनेवाली थी। चंद्रिका ने भी शरबत पिया।

सासुजी प्रसन्न चित्त मे पलँग के नीचे एक कंबल बिछवाकर बैठीं, और मेरे पिताजी की बर्बरता की खुली भाषा मे आलोचना करने लगी। मेरी कई बार इच्छा हुई कि उत्तर मे सासुजी को बर्बर कहूँ, लेकिन शृंगार की जगह, ससुराल में वीर-रस की अवतारणा अच्छी न होगी, सोचकर रह गया। सासुजी अंत तक यह कहती बाज न आईं कि उनकी पुत्री की तरह सुंदरी, पढ़ी लिखी, सुशील और बुद्धिमती लड़की संसार मे दुर्लभ है; अगर पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया, तो दैव-दुर्योग के अवश्यभावी थपेड़े खाते-खाते मेरे पाँवों भूत संसार के इसी पार रह जायँगे।

मैंने इसका भी जवाब नहीं दिया। फलत: सासुजी मुझे अत्यंत समझदार समझीं; कहा—"मैंने तुम्हारा ही मुँह देखकर विवाह किया है तुम्हारे पिता की तोंद देखकर नहीं।"

मुझे इसका मतलब लगाते देर नहीं लगी कि पिताजी अगर मेरा दूसरा विवाह करने लगे, तो मैं दूसरी ससुराल मे अपना मुँह न दिखाऊँ। मेरे ऐसे ही स्वभाव मे शायद प्रसन्न होकर सासुजी ने पूछा—"अच्छा, भैया, मेरी लड़की तुम्हें कैसी सुंदरी लगती है?"

मौखिक इम्तहान में मैं बराबर पहला स्थान पाता रहा हूँ। कहा—"मैंने आपकी लड़की को छुआ तो है, बातचीत भी की है, लेकिन अभी तक अच्छी तरह देखा नहीं; क्योंकि जब मेरे देखने का समय होता था, तब दिया गुल कर दिया जाता था। दूसरे दिन दियासलाई ले तो गया, जलाकर देखा भी, लेकिन सलाई के जलते

ही आपकी लडकी ने मुँह फेर लिया, और झोपड़े के अगल-बगल-वाले लोग खाँसने लगे। फिर जलाकर देखने की हिम्मत न हुई।"

सासुजी मुस्किराईं, और उठकर भीतर चली गईं।

भोजन के पश्चात् मैंने देखा, जैसे कवि श्रीसुमित्रानंदनजी पंत को रायबहादुर पं० शुकदेवविहारीजी मिश्र ने, मेरी सासुजी ने मुझे भी सौ में एक सौ एक नंबर दिए हैं, यानी मेरे शयन-कक्ष में बड़ी मोटी बत्ती लगाकर दिया रख दिया है, ताकि उनकी पुत्री के अनन्य लावण्य को मैं पूरी सार्थकता के साथ देख सकूँ।

मैं हर्षित हो आँखें बंद किए आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। सबका भोजन-पान समाप्त हो जाने पर मंद गति से संसार के समस्त छंदों को परास्त करती हुई उनकी पुत्री भीतर आई, और मुझे पान देती हुई बोलीं—"तुम कुल्ली के एक्के पर आए हो ?"

यह 'कुल्ली का एक्का' कौन-सी बला है ? मैं हैरान होकर सोचने लगा। श्रीमतीजी आनतवदना खड़ी मुस्किराती रहीं।

★

पाँच

प्रात काल जब आँख खुली, काफी देर हो गई थी। सासुजी प्रात:कृत्य के लिये पूछने आई। निवृत्त होकर जल-पान कर, एक किताब लेकर बैठा कि सासुजी ने कहा—"सुबह सूरज को किरन फूटने के साथ कुल्ली आए थे। हमने कहा, अभी सो रहे है। उन्होंने फिर आने के लिये कहा है। लेकिन, भैया, कुल्ली से मिलना-जुलना अच्छा नही।"

मैंने कहा—"जब वह खुद मिलने के लिये आवेंगे, तब मिलना ही होगा।"

"लेकिन वह आदमी अच्छे नहीं।" सासुजी ने गंभीर भाव से कहा।

"तो भी आदमी हैं इसलिये ....."

"हमारा यह मतलब नही कि वह सींगवाले हैं। आदमियों में ही आदमी को पहचान होती है।"

"जब आपको यह पहचान थी, तब आपने उनसे कह दिया होता कि मुलाकात न हो सकेगा।"

"पर गाँव के आदमी से एकाएक ऐसा नही कहा जाता, फिर तुम नातेदार हो, तुमसे गाँव-भर के आदमी मिल सकते है, स्नेह-व्यवहार मानकर, हमारा रोकना अच्छा नही।"

"तो क्या आपका कहना है, जब कोई स्नेह व्यवहार मानकर आवे, तब मैं ही उसे रोक दिया करूँ ?"

सासु जी अप्रतिभ होकर बोली—"नहीं, हमारा यह मतलब नही; उसके साथ रहने पर तुम्हारी बदनामी हो सकती है।"

"पर," मैंने कहा—"मेरे साथ रहने पर उसकी नेकनामी भी हो सकती है।"

सासुजी मुझे देखती हुई शायद मुझमे स्पष्ट नेकनामी के चिह्न देखने लगीं।

इसी समय कुल्ली आए, और अवरुद्ध कंठ से आवाज़ दी—"जगे ?"

सासुजी की त्योरियों में बल पड गए। श्रीमतीजी एक दफा इस तरफ से उस तरफ निकल गई। मैं शुरू से विरोध के सीधे रास्ते चलता रहा हूँ। कुल्ली इतना खतरनाक आदमी क्यो है जानने की उत्सुकता लिए हुए बाहर निकला। मधुर मुस्किराहट से आत्मीयता जताते हुए कुल्ली ने सिर झुकाकर नमस्कार किया। उसे अत्यत सभ्य मनुष्य के रूप मे देखकर मैंने भी प्रतिनमस्कार किया।

दिन के समय बाहर की बैठक मे मेरे रहने का प्रबध था। पलँग बिछाया जा चुका था। मैं बैठक की तरफ चला। पलँग के पास एक खाली चारपाई पड़ी थी। कुल्ली अपनी तरफ से उस पर बैठ गए। बराबरी की होड़ नही की, यह मुझे बहुत अच्छा लगा।

पलँग पर बैठकर मैंने अपनी सासुजी को उनके घनिष्ठ संबंध से याद कर लिया ।

इसी समय पान आए । कुल्ली ने तश्तरी लेकर आदर की दृष्टि से देखते हुए मेरी तरफ बढाई । मैने गौरव-पूर्ण गभीरता से दो बीड़े लिए । आशीर्वाद के स्वर से कुल्ली को भी खाने के लिये कहा । मुस्किराते हुए कुल्ली ने दो बीड़े ले लिए, और तश्तरी चारपाई पर रख दी ।

फिर बडी सभ्य भाषा मे बातचीत छेड़ी । बात उसी शहर के इतिहास पर थी । मैं देखता था, कुल्ली मुझे, खास तौर से मेरी आँखो का इस तरह देखते हैं, जैसे उनके बहुत बडे कोई प्रियजन है । यह दृष्टि इससे पहले मैने नही देखी थी । मुझे कौतूहल तो था, पर भीतर से अच्छा लगता था । कुल्ली ने कहा—"यह दलमऊ 'दल बाबा' का था । उनका किला अब भी है ।"

मुझे उत्सुकता हुई । मैने पूछा—"क्या क़िला अब भी है ?"

"हाँ," गभीर स्वर से कुल्ली ने उत्तर दिया—"लेकिन अब टूट-कर ढह गया है । यहाँ के पुराने अपढ़ लोग तो कहते है, किला दल बाबा के शाप से उलट गया है । जौनपुर के शाह से लडाई हुई थी । बरेली के बल और दलमऊ के दल मिलकर शाह से लड़े थे । यहाँ से कुछ दूर पर वह जगह है, जहाँ अब भी मेला लगता है । यहाँ की जगह और क़िले पर फिर मुसलमानो का अधिकार हुआ । शाह की क़ब्र यहाँ है, एक बारहदरी भी है, मकनपुर मे । बहुत पहले यह जगह कन्नौज के अधीन थी । जयचद का झोपड़ा यहाँ है, चौरासी के उस तरफ ।"

यह इतनी ऐतिहासिक जगह है, सुनकर मैं पुलकित हो गया । ऐसी जगह ससुराल देने के कारण परम पिता को धन्यवाद दिया ।

मन में इतनी महत्ता आ गई, जैसे मेरी श्रीमतीजी दल की ही दुहिता रही हो। मैं विच्छुरित आनद की दृष्टि से कुल्ली को देखने लगा।

कुल्ली ने कहा—"यहाँ घाट भी कई देखने लायक है। राजा टिकइतराय का घाट तो बडा ही सुदर है।"

मेरी ससुराल के संबध में एक साथ इतने नाम आएँगे, मेरा स्वप्न मे भी जाना न था। मैं एक विशिष्ट व्यक्ति की तरह गभीर होकर बैठा।

मुस्कराकर कुल्ली ने कहा—यहाँ और भी घाट हैं, मठ और मंदिर। बहुत पुरानी जगह है। उजडी बस्ती। देखने लायक है।"

"मैं देखूँगा।" मन-ही-मन ससुरालवालों को इतर विशेष कहते हुए मैंने कहा।

कुल्ली ने कहा—"जब चलिए, आपको ले चलूँ। इस वक़्त तो धूप हो गई है। शाम को चलें, तो चलकर किला देख आइए।"

मैंने सम्मति दी। कुल्ली ने कहा—"मैं चार बजे आऊँगा। यहाँ आदमी भी बहुत बड़े-बड़े हो गए है, जैसे मेरे वश के ...."

कुल्ली ने कुछ कवियो के नाम गिनाए। मैंने उन्हे भी बडी इज़्ज़त से मन मे जगह दी। कुछ देर बाद कुल्ली उसी तरह आँखें देखते हुए नम्रता-पूर्वक नमस्कार कर बिदा हुए।

मैं बैठा सोचता रहा—दुनिया कैसी दुरगी है। इस आदमी के लिये उसकी कितनी मद धारणा है!

बैठका निराला देखकर सासुजी भीतर आई। पहले कई बार शंकित दृष्टि मे झाँक-झाककर चली गई थी। आतेही हृष्ट चित्त से पूछा—"कुल्ली चले गए?"

गभीर होकर मैंने कहा—"हाँ, आज की बातचीत से मुझे तो वह बड़े अच्छे आदमी मालूम दिए।"

एक क्षण के लिये सासुजी फिर शंकित हो गई। फिर मुझसे कहा—"तुमने रामायण तो पढी होगी ?"

"यद्यपि मैं लडकी नहीं कि पतिदेव की आँखों में पढी-लिखी उतर जाने की ग़रज़ से रामायण-भर पढी है, फिर भी रामायण की बातें मुझे मालूम हैं, और आपके सामने परीक्षा ही देनी है, तो कहता हूँ, कुल्ली रावण या कुभकर्ण नही है, यह मैं समझ गया हूँ ।"

सासुजी मुस्किराई, बोली—"परीक्षा मे पास होने की शेखी लिए हुए भी तुम मेरी राय में रामायण मे फेल हुए। मैंने रामायण का ज़िक्र इसलिये नही किया था कि तुम कुल्ली को रावण या कुभकर्ण बनाओ, मेरी बात के सिलसिले मे कुभकर्ण तो बिलकुल ही नहीं आता, रावण के योगी बनकर भीख माँगने के प्रसग पर कुछ आता है, पर दरअसल ये दोनों मिसाले गलत आई, मतलब कालनेमि से था ।"

मैंने उसी वक्त कहा—"हाँ, 'कालनेमि जिमि रावण-राहू' लिखा है ?"

सासुजी मधुर मुस्किराई । कहा—"तुमने रामायण पढ़ी है, यह सही है । लेकिन यहाँ ... .."

"हनुमान्‌वाला प्रसग है कि मैं पकडकर पैर पटक देता ?" मैंने बात छीन ली जैसे, गर्व से सासुजी को देखा ।

सासुजी हँस दी, बोली—"इसमे शक नही कि तुमने बडा ही सुंदर अर्थ लगाया है, पर मुझे कह लेने दो । कालनेमि की मिसाल इसलिये है कि महावीरजी कितने साधु-सज्जन थे, वह भी उसकी बातों में आ गए थे, पहले नही समझ सके कि उसमे छल है ।"

"हूँ," मैंने कहा—"यह तो नही समझ सके, पर आपने अपनी पुत्री को समझा दिया होता कि वह मकरी-अप्सरा बनकर मुझे भेद बतला देतीं ।"

"पर वह मकरी नहीं, न मकरी की तरह उसने तुम्हें पकड़ा है, और जब कि उस तरह नहीं पकड़ा, तब मरकर, अप्सरा बनकर भेद बतलाने की उसे आवश्यकता नहीं हुई। परंतु तुम अगर उसे मारकर यह भेद जानना चाहोगे, तो हत्या ही तुम्हारे हाथ लगेगी।"

सासुजी के ज्ञान पर मुझे आश्चर्य हुआ, खास तौर से इसलिये कि उनकी बात का कोई तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया।

कुल्लीवाली चारपाई पर बैठी हुई सासुजी ने स्नेह के कंठ से मुझसे पूछा—"तुम्हारी और कुल्ली की क्या बातचीत हुई?"

उच्छ्वसित होकर मैं कुल्ली की आकर्षक बातचीत कहने लगा। मुस्किराकर सासुजी बोली—"कालनेमिवाला प्रसंग पूरा उतर रहा है। वह तुम्हें यहाँ से ले जाना चाहता है।"

मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने पूछा—"तो क्या यहाँ किला नहीं है?"

"किला है," सासुजी ने कहा—"लेकिन उसका मतलब तुम्हें क़िला दिखलाना नहीं मालूम देता।"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ?" मैंने रुखाई से पूछा।

इस तरह कि कुल्ली के हथकंडे हमें मालूम हैं।"

बात फिर भी मेरी समझ में न आई। सासुजी गंभीर होकर बोली—"जब जाना, तब चंद्रिका को साथ ले जाना। अकेले उसके साथ हरगिज जाना नहीं हो सकता।"

"क्यों?" मैंने कहा—"क्या कुल्ली मुझसे ज़्यादा शहज़ोर है, जो चंद्रिका बल पहुँचाएगा?"

सासुजी हँसी, कहा—"यह तो जानती हूँ, लेकिन फिर भी तुम लड़के हो, मा-बाप की बात का कारण नहीं पूछा जाता।"

कहकर उठी, और कहा—"चलो, नहा लो, भोजन तैयार है।"

★

छ

मै बचपन से आजादी-पसंद था। दबाव नही सह सकता था। खास तौर से वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो। एक घटना, अप्रासगिक न होगी, कहूँ। मैं आठ साल का था। पिताजी जनेऊ करने गॉव आए थे। गाँव के ताल्लुकेदार पं० भगवानदीनजी दुबे थे। उन्होने एक पतुरिया बैठाई थी। उससे एक लड़की और तीन लड़के हुए थे। जब की बात है, तब प० भगवानदीनजी गुजर चुके थे। ताल्लुका उनकी धर्म-पत्नी से पैदा हुए पुत्र के नाम था। एका-एक मर गए थे, इसलिये पतुरिया को और उससे पैदा हुए लडकों को अचल संपत्ति कुछ नही दे जा सके थे।

बाद को वसूली मे पतुरिया के लड़के अड़चन डालते थे। इस-लिये उनके अधिकारी भाई ने खाने के लिये उन्हे कुछ बागात और मातहत खेत दिए थे। मज़े में गुज़र होता था। पतुरिया थी।

उसके लडकों के नाम है--शमशेरबहादुर, जगबहादुर, फतहबहादुर और लडकी का नाम परागा ।

सबसे छोटे फतहबहादुर मुझसे आठ साल बड़े थे । चौधरी प० भगवानदीनजी ने सबसे बडे शमशेरबहादुर को बडे प्रयत्न से शिक्षा दिलाई थी । मैने उनका सितार बाद के जीवन मे सुना है । वह वाक्य प्रशंसा के साथ मुझे अब तक याद है । शमशेर का उन्होने जनेऊ भी किया था, और कहते हैं, जनेऊ-भोर के ब्रह्मभोज मे अपनी ताल्लुकेदारी के और प्रभाव मे आए और-और ब्राह्मणो को आमन्त्रित करके खिलाया भी था । इसके बाद शमशेर का एक विवाह भी किया था । लडकी ख़ालिस ब्राह्मण-घर की नही, बाला ब्राह्मण-विधवा मिली, उससे किया । तब से यह परिवार अपने को ब्राह्मण समझता है । ज़रूरत पड़ने पर ये लोग शमशेरबहादुर दुबे, जगबहादुर दुबे लिखकर सही करते है । अपनी मा पतुरिया को उसी तरह भोजन देते थे, जैसे एक हिदू यवनी को देता ।

इतने पर भी ताल्लुकेदार साहब की आँखें मुँदने के साथ-साथ गाँव के लोगो ने इनकी तरफ से भी मुँह फेर लिया । इनके यहाँ का पान-पानी गाँव तथा ग्वड़ के चारो ओर बात-की-बात मे बद हो गया ।

जब मैं गया, तब ये इसी अचल अवस्था मे थे । प्रतिशोध की ताड़ना से इन्होने गाँव तथा ग्वेड़ के हर घर का इतिहास कठाग्र कर रक्खा था । और, अधिकारी-अनधिकारी जो भी इनसे भली तरह बाते करता था, उसे घेरकर घटों सुनाते रहते थे—"रामचरण की बेवा लड़की के लक्खू पासी का हमल रह गया था; शिवप्रसाद मिसिर की बहन बीस साल की ब्याही न होने की वजह लछमन लोध के साथ भग गई ; रामदुलारे तिवारी अपने छोटे भाई को

बेवा स्त्री को बैठाले है ; सुदरसिह का लडका पल्टन मे था, ससुर ने पुतोहू के हमल कर दिया, बात फैल गई, थानेदार आए, फिर रुपया देकर दबाया, और पुतोहू को बेटे के पास लेकर चले कह-कर कलकत्ता, जाने कहाँ पहुँचे, वहाँ लडका होने पर उसे मारकर पुतोहू को बेटे के पास ले गए ; कहा—संग्रहणी हो गई थी, कल-कत्ता इलाज कराने गए थे ।"

गाँव आने पर इसी ख़ानदान का मुझ पर सबसे ज्यादा प्रभाव पडा । यही मुझे आदर्श आदमी नजर आए—चेहरे-मोहरे के, बात-चीत के, उठक-बैठक के । तब मेरा जनेऊ नही हुआ था, इसलिये खान-पान की रोक-थाम न थी । पतुरिया मुझसे स्नेह करती थी, खिलाती थी और लतीफ़े सुनाती थी । नए ढग के कुछ दादरे और ग़ज़लें सिखाई थी ।

एक दिन उनके छोटे लडके ने, जिनका मुझ पर ज्यादा प्रभाव था, कहा—"तुम्हारे बड़े चाचा हमारे यहाँ नौकर थे, हमारे घोड़े ने उनका हाथ काटकर बेकाम कर दिया था, तब हमने माफी दी थी, वह जमीन आज भी तुम्हारी चाची जुताया करती है ।"

यह बात सच है । लेकिन ताल्लुकेदार भगवानदीन ने जब माफी दी थी, तब उनके यह पुत्र-रत्न भूमिष्ठ नही हुए थे । मैं तब यह इतिहास नही जानता था । मुझे मालूम पडा, यह सब इन्होंने किया है ।

इसके बाद कहा—"अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जब जनेऊ हो जायगा, न खाओगे ।"

मैंने खुदबखुद सोचा—"यह अन्याय है । अगर आज खाते है, तो कल क्यों न खायँगे ?"

परागा बहन ने कहा—"बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नही।"

मुझे झेप मालूम दी। मै हलुआ छोड़कर लप्सी नही खाता, मन मे कहा। कुछ दिन बाद जनेऊ हुआ। अब तक इस घर के आदमी आदमी ने बगावत के लिये मुझे तैयार कर लिया था। मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि जनेऊ चाहे तीन बार हो, लेकिन मै यहाँ भोजन न छोड़ूँगा। इनकी बाते मुझे सगत मालूम देती थी। अगर गाँव-वाले कभी इनके यहाँ खाते थे, तो अब क्यो नही खाते?"

जनेऊ हो जाने के दूसरे रोज पिताजी ने एकात मे बुलाकर मुझसे कहा—"अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।"

"मैने कहा—"पतुरिया का छुआ तो उनके लडके भी नही खाते-पीते।" पिताजी ने कुछ समझाकर कहा होता, तो मेरी समझ मे बात आई होती, उन्होंने डाँटकर कहा—'उसके हाथ का भी मत खाना।"

मैने पूछा—"जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे?"

पिताजी ने होठ चबाकर कहा—"हम जैसा कहते है, कर।"

यही मैं कमज़ोर था। दिल से बात न मानी। जनेऊ के बाद दो-तीन दिन कही न गया, जनेऊ छुड़ाता-उतारता रहा। दिन-भर मे कितने जनेऊ बदलने पडते थे। जनेऊ के बाद दो दिन पतुरिया के घर न गया; लोगो की धारणा बँध गई, मैं रोक दिया गया, और बात मैंने मान ली।

तीसरे या चौथे दिन प० फ़तहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डौल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा। मुझे देखकर वह मुस्किराए। मेरे दिल मे जैसे तेज़ तीर चुभा। बड़ा अपमान

मालूम दिया। मैने उनके पास पहुँचकर कहा—"भैया, पानी पिला दीजिए।"

भैया प्रसन्न हो गए। डोल से लोटे मे पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक्त उन्हे गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी, जैसे काई किला तोडा हो। उन्होने गाँव के और लोगों को देखकर अपने ब्राह्मणत्व का गर्व किया था, मैंने अपनी प्रतिज्ञा-रक्षा का।

जिन पर भैया फतहबहादुर ने फतह पाई थी, उनमे भी सिर उठाने का हौसला कम न था। वे पिताजी के पास गए, और सिर उठाकर कहा—"आपका लडका सबके सामने पतुरिया के छोटे लड़के का भरा पानी उन्ही के लोटे से पी रहा था। अभी नादान है, इसलिये इस दफा माफ किए देते है; फिर अगर ऐसी हरकत करते देखा गया, तो हमें लाचार होकर आपसे व्यवहार तोडना होगा।"

पिताजी पहले आज्ञा दे चुके थे, फिर ब्राह्मणो ने बात सभ्य ढग से कही थी, पिताजी का क्रोध सप्तम सोपान पर पहुँचा। एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, इस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान! कहा है—"सब ते अधिक जाति-अपमाना।" जाते ही मुझे पकड़कर फ़ौजी प्रहार जारी कर दिया। मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हे भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे है। मैं भी, स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गई थी।

जब पिताजी के बिजली के हाथ छुट रहे थे, मैं चिल्लाता हुआ

उनकी पहले की मारें याद कर रहा था—"एक दफ़ा जाडे के दिनो मे रात आठ बजे मैने बगल की बाड़ी मे पाखाने की हाजत रफा की, और योरपियनो के कागज का काम बैंगन के पत्तों से लिया, फिर भोजन के लिये रसोई जाना ही चाहता था कि भाभी ने रोक दिया, उन्होने झरोखे से मुझे देख लिया था। पिताजी से यथातथ्य कह दिया। पिताजी पहले गरजे, फिर एक हाथ से मेरी बाँह पकड़-कर टाँग लिया, और ताल की ओर ले चले उसी तरह टाँगे हुए। वहाँ उसी तरह पकड़े हुए डुबा-डुबाकर नहलाने लगे, 'सौचता जा, सौचता जा' कहते हुए। जब अपनी इच्छा-भर नहला चुके, तब प्रहार के ताप से जाडा छुटाने लगे।

याद आया—"एक बार एकात मे मैने पिताजी को सलाह दी थी—"तुम्हारे मातहत इतने सिपाही है, तुम इस राजा को लूट क्यों नही लेते ?" पिताजी ने सोचा, यह किसी दुश्मन की सिखाई बात है, जो उनकी नौकरी लेना चाहता है। मुझे मार-मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है। मैं किसका नाम बतलाता। वह उद्भावना मेरी ही थी। मै जितना ही कहता था, यह बात मेरी ही सोची हुई थी, पिताजी उतना ही संदेह करते और मार-मारकर पूछते जाते थे। मैं कुछ देर बाद बेहोश हो गया था। (तब से आज तक मैं नौकर और नौकरी को पहचानता हूँ। इस बयालीस साल की उम्र मे, पहले, बड़ी मजबूरी में नौकरी की थी, सिर्फ दो ढाई साल चली। अस्तु।)

चाँटे की ताल-ताल पर पिताजी कबूल करा रहे थे, फिर तो मैं पतुरिया के यहाँ का पानी न पिऊँगा, मैं स्वीकार कर रहा था। किसी तरह छुट्टी मिली।

दो तीन दिन समय का दर्द अच्छा होने में लगा। एक दिन मैं बाहर

निकला कि दुर्भाग्य से फिर वैसा ही प्रकरण आ पड़ा। गाँव के मुखिया क्रोध से भरे हुए, गाँव के लोगो की रक्षा के विचार से, गए, और गभीर होकर नाम लेते हुए कहा—"क्या तुम दूसरो का धर्म लेना चाहते हो ? आज तुम्हारा लड़का पतुरिया के लड़के से ले-लेकर भूने चने चबा रहा था। आज से गाँव के ब्राह्मणों मे तुम्हारा व्यवहार बद है।"

ओज की मात्रा पिताजी मे उनसे अधिक थी। फिर मुखिया ने ये बाते डाँट के साथ कही थी। व्यक्तिगत बात को व्यक्तिगत रूप देते हुए उन्होने कहा—"तू हमारा पानी बद करेगा ? तू पासी का है, गाँव मे जा और पूछ, तेरी लड़की पटने में एक-दो-तीन-चार, एक-दो-तीन-चार कर रही है—हम अपनी आँखो देख आए है। माना कि चौधरी भगवानदीन का काम बेजा था, लेकिन उनके सामने कहते। नही, जब तक वह जिए, इन्ही लड़को की (अग-विशेष का उल्लेख कर कहा) धो-धोकर पीते रहे, अब सब छूगे के बने फिरते हो ? शहर मे होते, तो देखते हम, कितने आदमियों का बबे का पानी और डॉक्टर की दवा छुड़ाते हो। यहाँ क्या, नाम के करने को कौन-सा काम और गाने को छीता-हरन।"

मुखिया का थूक सूख गया। विशेष अस्वस्थ हो जैसे, धीरे-धीरे लौटे।

पिताजी ने गंभीर स्नेह-स्वर से पुकारा—"अरे ए मुखिया, तमाकू खाए जाओ !"

मैं अब विकास पर हूँ। इन मेरी आँखों मे धूल झोंकी जा रही है। मैं जरूर कुल्ली का साफ़ आसमान देखूंगा। चद्रिका मेरे साथ कर दिया जायगा, तो उस बेवक़ूफ़ को एक काम देकर अलग कर देना कौन बड़ी बात है ? कहूँगा, अत्तार के यहाँ से रूह ले आ

मालिश के लिये। रूह लेकर बडे रास्ते पर खड रहना, हम वहीं मिलेगे। देखा जाय, ये लोग कुल्ली के नाम से क्यो कान खड़े करते है। इसी प्रकार अपना आगे का कार्य-क्रम तैयार कर रहा था कि बैठक का दरवाजा खुला।

"भीतर आऊँ ?" विनीत सभ्य कठ की आवाज आई। मै समझ गया, कुल्ली है।

"आइए।" मैंने उसी सभ्यता से कहा। कुल्ली एक घंटा पहले आए थे। बहुत बने-ठने। बालो से तेल जैसे टपकने पर हो। चिकन का धुला कुरता। ऊपर वास्कट। हाथ मे बेत। गर्मी के दिनों में भी पैरो मे मोज़े। विनीत, अप्रतिभ दृष्टि और श्री-हीन मुख। बात-बात मे कालिदास के "शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार:।" तब चाटूक्ति अच्छी लगती थी, क्योकि उसका दर्शन न समझता था, कालिदास का यौन विज्ञान भी नही; समझता तो उस दृष्टि, चेहरे और बातचीत से ही खात्मा कर दिया होता।

कुल्ली ने बडे अदब से इलायची दी। मैने ले ली। कहा—"आप घटे-भर पहले आए।"

कुल्ली ने उत्तर दिया—"पाँडेजी का मंदिर भी रास्ते मे देख लेगे।"

सासुजी पहले से सतर्क थी। फाटक बद कर उसी दालान मे अपना पलँग डलवाया था, और दुपहर-भर कुल्ली का रास्ता देखती रही। चद्रिका को अपनी ही दालान मे सुलाया था। दुपहर-भर उससे हम लोगो की बाते पूछती रही—"कैसे रहते है, क्या खाते हैं, कौन कैसे हैं, घर मे किसका स्वभाव अच्छा है।" आदि-आदि।

चद्रिका बहुत अर्थों में बेवक़ूफ़ था। उससे घर की कोई भी बात मालूम की जा सकती थी। थोड़ी देर में देखता हूँ, अपने डडे पर

अच्छी तरह तेल चुपड़े हुए चद्रिका बैठक के भीतर आया, साथ चलने के लिये कपड़े पहनकर, बिलकुल तैयार होकर।

चद्रिका को देखकर कुल्ली कुछ सहमे-से। फिर उससे कहा—"एक लोटा पानी हमारे लिये ले आओ।" चद्रिका पानी लेने गया, तो मुझसे बोले—"क्या यह भी साथ जायगा ? इसका कौन-सा काम है?"

कुल्ली के कहने से मेरा कौतूहल बढा। मैंने कहा—"साथ जाना उसका फ़र्ज़ है। लेकिन मैं उसे सौदा लेने के लिये दूसरी जगह भेज दूँगा।"

कुल्ली ने अपने ढग से समझा। कुल्ली ने सोचा, मैं उनका इरादा समझ गया हूँ, और उनकी अनुकूलता कर रहा हूँ; मैं वैसा ही आदमी हूँ, जैसा उन्होने सोचा था।

चद्रिका पानी ले आया। दो-एक छीटे मुँह पर मारकर कुल्ली ने कहा—"बडी गर्मी है। इतना ही आया, ब्रह्माड फट रहा है।" चंद्रिका कुल्ली को देख-देखकर आजमा रहा था कि एक झपट होने पर आसमान दिखा सकेगा या नही। मुँह पर छीटे मारकर, दो-एक घूँट पानी पीकर कुल्ली ने कहा—"अब देर न कीजिए।"

मैं घर के भीतर चला। फाटक के पास जाते ही मालूम हुआ, सारा घर साँस साधे हुए है। फाटक खोलने पर सासुजी मिलीं, स्तब्ध भाव से मुझे देखती हुई। उनकी बेटी उनकी आड मे। मैं सीधे अपने कमरे में गया। बाल कघी किए, कपडे बदले, जूते पहने; फिर छाता लेकर बाहर निकला। सासुजी रास्ता रोककर खडी हो गई। अपने यहाँ का एक डंडा देती हुई बोली—"इसे भी ले लो। जंगल का रास्ता ठहरा।"

मैंने कहा—"ज़रूरत पर मैं छाते से काम ले लूँगा।"

सासुजी की बेटी हँसीं। मैं बाहर निकला।

मै फिर बैठके मे न घुसूँ, इस विचार से कुल्ली दरवाज़े के पास आ गए थे, मेरे निकलते ही निकल पड़े। कुल्ली के पीछे चद्रिका भी निकला। कुल्ली ने उसे घृणा से घूरा, पर कुछ कहा नही। रास्ते पर जाकर खड़े हो गए। मै भी बढ़ा। मेरे पीछे चद्रिका। चंद्रिका का रहना कुल्ली को अखर रहा था। मुझे सासुजी की बात याद आ रही थी कि कुल्ली मुझे यहाँ से ले जाना चाहता है। उसका उद्देश किला दिखाना नही। पर उसका उद्देश क्या है, जानने की बड़ी उत्सुकता हुई। इसी समय हम लोग बड़े रास्ते पर आए। कुल्ली ने एक दफ़ा मेरी तरफ देखकर इशारा किया कि अब इसे बिदा कर दो। वह इशारा, मुँह और आँख का बनना, मुझे बड़ा अच्छा मालूम दिया। दो-एक दफा ऐसे इशारे और हो, देखूँ, इस अभिप्राय से चद्रिका को लिए रहा। कुल्ली का उत्साह टूट गया : चाल धीमी पड़ गई। पर आशा से हृदय बाँधकर पाँडेजी के शिवाले की तरफ़ चले।

कुछ दूर पर शिवाला मिला। चारो ओर घूमकर हम लोगों ने मदिर देखा, देवता के दर्शन किए, फिर मदिर की चित्र-कला देखते रहे। फिर बैठकर कुछ देर विश्राम करने और पुजारीजी की बात-चीत सुनने लगे। ज्यों-ज्यो देर हो रही थी, कुल्ली का पेट ऐंठ रहा था। पुजारीजी की बातचीत चल रही थी कि उस साल भगवान् का जन्म-दिन मुहर्रम के दिन पडा; जब ताजिए उठ रहे थे, पुजारी भगवान् की आरती कर रहे थे; आरती मे खूब बाजे बज रहे थे, इस्पेक्टर साहब के पूछने पर पुजारीजी ने कहा कि जिनके यहाँ आदमी मरा, और कही लाश का पता नही, उनके यहाँ तो ये सब, और पुजारीजी के यहाँ आज भगवान् पैदा हुए (कहते हैं, उसी दिन पुजारीजी की स्त्री के लड़का हुआ था), तो यहाँ कितना उछाह होना चाहिए।

कुल्ली ने बीच मे टोककर कहा—"महाराज, अभी और जगहें देखनी है।" कहकर उठकर खड़े हो गए।

मै पुजारीजी की बात खत्म होने पर उठा। तब तक कुल्ली सैकड़ों मर्तबे निगाह से मुझे उठाते रहे। मै देखता और सुनता रहा। शिवाले के बाहर निकलकर कुल्ली ने फिर इशारा किया। इस बार कुल्ली का इशारा चद्रिका ने देख लिया। लेकिन बात उसकी समझ मे न आई। उसने सोचा था, आगे चलकर कुल्ली को मारने की नौबत आएगी; पर इस इशारे मे उसे काफ़ी स्नेह दिखाई दिया।

इसी समय अत्तार के यहाँ से मैने रूह ख़रीद लेने की आज्ञा दी। चद्रिका असमजस मे पड गया—उसे सासुजी की आज्ञा साथ न छोडने के लिये थी; सासुजी की बात याद आई—साथ न छोडना, दोस्त-दुश्मन कौन कैसा साथ रहता है; लेकिन कुल्ली को दुश्मन मे शुमार न कर सकने के कारण उतरे गले से कहा—"मै भी क़िला देख लेता।"

कुल्ली ने कहा—"क्या आज से किले का आना बद हुआ जाता है? कल देख लेना; कही मालिक की हुक्म-अदूली की जाती है? जाओ, रूह ख़रीद लो। वह आगे दूकान है।"

चद्रिका मेरी तरफ़ देखने लगा। मुझे भी उत्साह था। कहा—"ख़रीदकर यही या बड़े रास्ते पर रहना। हम घटे-भर में आ जाते हैं।"

चद्रिका मुड़ा। कुल्ली ने उत्साह से सीना तानकर गर्दन उठा दी। मुझे भी यह मुद्रा अच्छी लगी। बंगाल में ऐसी अंग-भंगी देखने को न मिली थी।

हम ढाल से नीचे उतरे। क़िला देख पड़ने लगा। मिट्टी के दो

काफी ऊँचे टीले हैं, एक दूसरे से जुड़े हुए। इन्ही पर इमारत थी। इस समय केवल एक बारहदरी दूर से देख पडती है। किले के चारो तरफ ईटों की चहारदीवारी थी, जगह-जगह मालूम देता है। ईटें कहीं-कही बहुत बडी है। बाकी इमारत की ईट लखनऊ की जैसी कागजी थी, लेकिन बहुत पकी हुई मजबूत। घुसते एक फाटक मिला, मज़े का, इन्ही ईटो का बना। फाटक का रास्ता कागजी ईटे गाड़-कर बनाया हुआ, नीचे से ऊपर को चढता हुआ, गऊघाट की तरह का। दूर से दृश्य अच्छा मालूम देता है, ऊपर से और अच्छा। हम लोग फाटक से होकर चढते हुए किले के भीतर गए। जाने पर प्राचीनता का नशा जकड लेता है, जिसकी स्तब्धता दूर इतिहास-काल मे ले जाकर एक प्रकार का प्रगाढ आनद देती है। कुल्ली ने दूसरे टीले की तरफ हाथ उठाकर कहा—"वह रनवास है। बैठ गया है, दो-एक जगह से मालूम देता है। नीचे की दालानें देख पडती है। एक तहखाना भी है! लोग कहते हैं, यहाँ बड़ी दौलत है।"

फिर आगे बढे। एक जगह, एक मस्जिद थी, टूटी हुई। कुल्ली ने कहा—"यह मस्जिद है। शाह का कब्जा होने के बाद बनी थी। इसीलिये दूसरी इमारतो के मुकाबले नई मालूम देती है। सामने यह सिपाहियों के रहने की जगह थी, अब कुछ कब्रे है। देखिए, उस फाटक से उस बारहदरी तक कई फाटक थे। ड्योढियाँ थी। सिपाही पहरे पर थे। जगह देखते जाइए, धीरे-धीरे कैसी ऊँची होती गई है। बारहदरी के पास किला काफी ऊँचा है।"

वैसे ही बढते हुए कुल्ली ने दाई तरफ एक कुआँ दिखलाया। उस समय वह सूख गया था। कुएं के आगे ढाल मे नीचे, किले का नाब-दान है। मुसलमानों का अधिकार होने पर क़िले की पत्थर की

मूर्तियाँ वहाँ फेक दी थी, अब भी काफ़ी सख्या मे पड़ी है। इसी जगह से बाहर निकलने को, कहते है, एक सुरग थी। हम लोग बारहदरी की तरफ चले। कुल्ली ने कहा—"पहले यहाँ बहुत अच्छी इमारत थी। कुछ टूट गई थी। अँगरेजों ने मरम्मत कराई, और अपनी कचहरी लगाते थे।"

मैंने देखा, जैसे एक छोटे पहाड़ की चोटी पर पहुँचा हूँ। बारहदरी के ठीक नीचे गगा बह रही थी। कुछ सीढ़ियाँ बनी थी, जिनसे मालूम होता था, ऊपर से नीचे गगा तक उतरने का ज़ीना बना था। किला ऐसे मौके पर कि एक तरफ से गगा का प्रवाह जैसे रोके हुए है। बरसात मे किले की बगल से सटकर गगा बहती है। एक तो वहाँ गगा का पाट भी चौडा है, दूसरे बहुत बडा कछार भी है, ऊँची जगह, निगाह दूर-दूर तक जाती है, जिससे जी को वैसा ही प्रसाद मिलता है। देखकर मुझे बड़ा आनद आया। मेरी खुशी से कुल्ली भी खुश हुए। बारहदरी पर जानेवाली सीढ़ी के सिरे पर बैठ गए। मैं भी थका था, बैठ गया।

कुल्ली ने कहा—"दोस्त, क्या हवा चल रही है ?"

कुल्ली का दोस्त कहना मुझे बड़ा अच्छा लगा। मित्रता की तरफ और गुरुडम के खिलाफ मैं पहले से था। मैने कुल्ली का समर्थन किया। कुल्ली मुस्किराए मेरी मैत्री की आवाज़ पर, फिर इस स्वर को और उदात्त कर बोले—"दोस्त, तुम्हारा चेहरा बतलाता है कि तुम गाते हो, कुछ सुनाओ वक्त की चीज़।"

मैं गद्गद हो गया यह सोचकर कि वक्त की चीज सुननेवाला संगीत-मर्मज्ञ है। तारीफ से मैं अभी कल तक उमड आता था; उमड़ जाने पर आदमी हल्का हो जाता है, न जाना था। गाने लगा। कुल्ली सिर हिलाने लगे। मैं देखता था, ताल के साथ कुल्ली के सिर

हिलाने का संबंध न था। आश्चर्य हुआ कि ऐसा समझदार यह क्या कर रहा है। इसके बाद कुल्ली ने सम की जगह समझकर "हूँ." किया; वहाँ सम न थी। एक कडी गाकर मैंने गाना बद कर दिया।

कुल्ली ने कहा—"यार, तुम तो बहुत ऊँचे दर्जे के गवैए हो, हमारा इतना जाना न था।"

मैं फिर फूल गया। कुछ उस्तादो के नाम गिनाए, जिनमे कुछ से कुछ सीखा था, अधिकाश के नाम सुने थे, कहा—"इन सबसे मैंने यह विद्या ली है।"

मेरे गुरुत्व पर गभीर होकर कुल्ली बोले—"हाँ, ये सब लोग राना साहब के यहाँ आते हैं। पर तुम्हारी और बात है। तुम्हारा गला क्या है! तुम्हारा गला है, जादू है?"

मैं सयत होने लगा, कुल्ली जो कुछ कह रहे है, ठीक है, समझकर।

शाम हो रही थी। घर की याद आई। मैने कहा—"अब चलना चाहिए।"

कुल्ली भावस्थ हो गए, फिर एक गर्म साँस छोड़ी, कहा—"अच्छा, चलो। हम लोग चलें।"

कुल्ली जिस रास्ते से ले चले, यह नया था। मेरे पूछने पर कहा—"ज़रा ही दूर मेरा मकान है। अपनी चरण-रज से पवित्र तो कर दो।"

तब मैं ब्राह्मण था, इसलिये चरण-रज से पवित्र करने की ताकत है, समझता था। कुल्ली के मकान के साथ कुल्ली का देह भी सलग्न है भाव-रूप से, इसलिये उसके पवित्र करने की बात भी मेरे मन में आई, क्योंकि मैं देख चका था, कुल्ली की भली बात का व्यंग्य

रूप से लोग बुरा अर्थ लगाते है, फलत: कुल्ली के पवित्र होने की ज़रूरत है। कुल्ली अब तक के आचरण से किसी तरह भी अनाचरणीय मनुष्य नही। उसका यह भाव लोगो मे व्यक्त हो जाना चाहिए। चुपचाप कुल्ली के साथ चला जा रहा था। पुराने बाजार से कुछ आगे चौरासी पर कुल्ली का मकान था। कुल्ली ने घर का ताला खोला। गृह की यह दशा देखकर मैने सोचा—कुल्ली त्यागी मनुष्य है। जबुको के वन मे अकेला सिद्ध वेदात-केसरी की तरह रहता है। कुल्ली ने लालटेन जलाई। फिर कहा—"यही झोपडी है। घर मे मैं अकेला रह गया हूँ। कुछ जमीदारी है। लडके-बच्चे, जोरू-जाते कोई नही, दो एक्के चलवाता हूँ। शौक से रहता हूँ, यह आदमियो को अच्छा नही लगता। मान लो, कोई बुरी लत हो, तो दूसरो को इससे क्या ? अपना पैसा बरबाद करता हूँ !"

बात मुझे सगत मालूम दी। मैंने कहा—"दूसरो की ओर उँगली उठाए विना जैसे दुनिया चल ही नही पाती।"

कुल्ली खुश होकर बोले—"हाँ, लेकिन दुनिया मे हमारे-तुम्हारे-जैसे आदमी भी है, जो लोगो के उँगली उठाने से घबराते नही।"

कुल्ली ने बडे स्नेह के साथ मुझे पान दिया, और मेरे पान लेते वक्त जरा मेरी उँगली दबा दी। मै बहुत खुश हुआ यह सोचकर कि ससुराल के सबध से कुल्ली मेरे साले होते है, मुझसे दिल्लगी की है। मुझे खुश देखकर कुल्ली विचित्र तरह से तने। कुछ देर तक इस उत्तेजना का आनद लेकर बोले—"कल तुम्हारा न्योता है मिठाई का। लेकिन किसी से कहना मत, क्योंकि यहाँ लोग सीधी बात का टेढा अर्थ लगाते हैं। कल नौ बजे तक आ जाओ।" फिर बहुत दीन होकर बोले—"गरीबों पर भी कृपा की जाती है।"

आजकल जिस तरह लोग मेरा व्यग्य नहीं समझते, उसी

तरह पहले लोगों का व्यग्य मेरी समझ मे न आता था। मैंने कुल्ली का आमत्रण स्वीकार कर लिया; और चलने को तैयार हुआ।

मेरे मुँह की ओर देखते हुए कुल्ली ने कहा—"पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हे ! तुम्हारे होंठ भी गज़ब के है। पान की बारीक लकीर रचकर, क्या कहूँ, शमशीर बन जाती है।"

कुल्ली हृदय की भाषा मे कह रहे थे, मैं कुल अर्थ ससुराल के संबध से लगाता हुआ बहुत ही प्रसन्न हो रहा था।

मैं बढा। कुल्ली बडे रास्ते तक आए, और नमस्कार करके कहा—"कल सबेरे नौ बजे इतजार करूँगा।"

मैंने भी प्रतिनमस्कार किया। ढाल के पास चद्रिका खडा था। देखकर कहा—"बहुत देर कर दी बाबा, तुमने। मुझे शका हो रही थी कि कही धोखा न हुआ हो।"

मैंने कहा—"चद्रिका, धोखा तो खैर नही हुआ, लेकिन धोखा देना है। तुम्हारी नानी पूछे, तो कहना, हम साथ थे।"

चद्रिका ने स्वीकार कर लिया। मैं कुल्ली की बातों के विचार में था, चद्रिका के स्वभाव के अनुकूल समझाना याद न था।

सासुजी सर्वांत.करण से हमारा रास्ता देख रही थी। मैं कपड़े छोडने भीतर गया, सासुजी चद्रिका से पूछने लगी—"कहाँ-कहाँ गए चद्रिका ?"

चंद्रिका ने उतरे गले से कहा—"कही नही, बाबा के लिये रूह लेने गया था।" इतना कह जाने पर चद्रिका को होश हुआ।

सासुजी को इतनी पकड काफी थी। पूछा—"भैया ने भेजा था ?"

"हाँ।" चद्रिका ने रुखाई से कहा, गलती कर जाने के कारण।

सासुजी ने पूछा—"फिर ?"

चद्रिका रुका, और फिर सँभलकर कहा—"फिर क़िले गए।"

सासुजी ने पूछा—"वहाँ सतमजिला मकान देखा था ?"

चद्रिका ने कहा—"हाँ।"

सासुजी ने पूछा—"वहाँ एक बहुत बडा ताल है, वहाँ गए थे ?"

चद्रिका ने कहा—"हाँ।"

सासुजी ने पूछा—"किले पर लखपेडा बाग है, देखा था ?"

चद्रिका ने कहा—"हाँ, बहुत देर तक सब लोग देखते रहे।"

सासुजी समझ गई, भीतर से एक डडा लाकर दिखाती हुई बोली—"देख, दहिजार लोध ! भले आदमी की तरह ठीक-ठीक बता, नही तो वह डडा दिया कि मुँह टेढा हो गया। तू कहाँ था ?"

चद्रिका ने कहा—"देखो नानी, मुझे मारो मत, न मै किले का नौकर हूँ, न किसी दूसरे का। जिनका नौकर हूँ, उनसे पूछ लो।"

बात पानी की तरह साफ हो गई। सासुजी को पूछने की जरूरत नही हुई। मै निकला, तो मुँह पर ऐसी दृष्टि उन्होने डाली, जैसे मुँह सड गया हो। चद्रिका को पास खडा देखकर मै समझ गया।

कुछ देर बाद सासुजी भीतर गई। मै निश्चय कर लेने के विचार से बाहर निकला। पीछे-पीछे चद्रिका भी आया। फाटक के बाहर आकर मुझे पकडकर रोने लगा। कहा—"बाबा, मै व रहूँगा।"

मैंने कहा—"अरे चद्रिका, इतनी जल्दी ऊब गए ? अभी कुछ दिन रूह की मालिश तो करो।"

चद्रिका ने रोनी आवाज़ मे सासुजी की प्रश्नावली और अपने उत्तर सुनाए। मेरे होश उड गए। बडी लज्जा लगी। लेकिन उपाय न था।

हार खाने पर चिढ हुई। मन ने कहा—"क्या बिगाड लेगे ? वे सभ्य आदमी ही नही है। होते, तो नौकर से भेद न लेते फिरते। इसी वक्त पूरी लापरवाही से रूह की मालिश कराओ। इन्हे समझा

दो कि तुम देहात के रहनेवाले ऐरे-ग़ैरे नहीं हो । तुम्हारी दूसरी ही बातें हैं।

मन मे आते ही मैं फाटक के भीतरवाले आँगन मे गया, और चारपाई पर चद्रिका को दरी बिछाने के लिये कहा। सासुजी मेरी बिगड़ी मुद्राएँ कुछ देर तक देखती रहीं, फिर चुपचाप भीतर चली गईं। चद्रिका ने दरी बिछाई, रूह को शीशी ले आया। मैं चित लेट गया, और छाती दिखाकर कहा, यहाँ लगाओ।

चद्रिका ने रूह और तेल मे भेद नही किया। २०) की रूह एक साथ गदोरी मे लेकर छाती मे थपथपाया, फिर कहा—"लेकिन बाबा, इतनी ही है, इससे क्या होगा ?"

एक दफा मेरा जी छन्न से हुआ कि इसने बीस की मत्थे दी ; पर साँस साधे पडा रहा कि कुछ कहूँगा, तो अशिष्टता होगी। रूह की ख़ुशबू चारो तरफ उड चली। ससुरजी सूँघते-सूँघते बाहर निकल आए, और सूँघते और आँखे तिलमिलाते हुए बोले— 'अरघानें उठ रही हैं, बच्चा !"

मैंने आवाज़ दी। उन्होने ख़ुश होकर कहा—"इतना अतर-फुलेल न लगाया करो, हूरें पकडती हैं।" कहकर प्रसन्न होकर चले गए।

सुगंध भीतर तक आफत कर रही थी। सासुजी बाहर निकलीं। चंद्रिका तल्लीन होकर तेल को-जैसी मालिश कर रहा था। सासुजी कुछ देर तक देखती रही। फिर पूछा—"इत्र है ?"

मैंने गभीर होकर कहा—"रूह !"

सासुजी चौकी। पूछा—"कितने की है ?"

मैंने गभीर शालीनता से कहा— 'बीस रुपए की।"

सासुजी देर तक विस्मय की दृष्टि से देखती रही। फिर पूछा— "ऐसी मालिश कितने-कितने दिन बाद करते हो ?"

मैने वैसे ही उदात्त स्वर से उत्तर दिया—"एक-एक दिन का अँतरा देकर।"

सासुजी फिर थोडी देर तक देखती रहीं, और एक लडकी की तरह पूछा—"इससे क्या होता है?"

मैने कहा—"सीना तगडा होता है।"

मेरा सीना बचपन से चोडा था। सासुजी ने विश्वास कर लिया। कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खडी रहकर अत्यत स्वाभाविक स्वर से पूछा—"तुम्हारे पिताजी तनख्वाह कितनी पाते है?"

इसका उत्तर बडा अपमान-जनक था, पिताजी की तनख्वाह बहुत थोडी थी, किसी भली जगह किसी तरह कहने लायक़ नही। पर जहाँ विश्व का ऐश्वर्य झूठ है, वहाँ झूठ का हिसाब लगाना भी किसी सत्य की शक्ति की बात नही। सही बात को दबाकर गले मे खूब ज़ोर देकर कहा—"पिताजी की आमदनी की कितनी सूरतें हैं, क्या कहूँ? उनकी आमदनी कब कितनी हो जायगी, कहाँ से, कैसे, किससे, यह वही नही बता सकते।"

उत्तर सुनकर सासुजी एकाएक रोने लगी, कुछ देर रोकर स्वयं ही भाव स्पष्ट किया—"जो बाप अपने बेटे के लिये रोज मालिश मे बीस रुपए की रूह खर्च करता है, वह अपनी बहू के लिये बीस सौ का चढावा भी नही लाता? अरे राम रे! मुझे क्या हो गया, जो मैंने शादी कर दी!"

मुझे एक आश्वासन मिला कि पहली बात दब गई। रूह सूख चुका थी, चद्रिका रगड-रगड़कर आग निकाल रहा था। मैंने मालिश बद करा दी।

घर मे सन्नाटा था, जिसे 'मसा नही भन्नाय' कहा है। देर तक भोजन के लिये बुलावा न आया। बैठा 'चर्पट-पजरिका' के धोखे

श्लोक याद करता रहा । बिलकुल विरोधाभास—एक दिन मे यह हाल, तो पूरी गवही कैसे पार होगी ? साले साहब, जो इस समय कई बच्चो के बाप है, तब मुश्किल से चार साल के थे। एकाएक चिल्लाकर रो उठे। चद्रिका झपकियाँ ले रहा था, सोचा—खाने का बुलावा है, सजग होकर सुनने लगा, फिर वीतश्रद्ध होकर हाथो से घुटने बाँधे ।

मैने पूछा— 'चद्रिका, कैसा लग रहा है ?"

चद्रिका ने कहा—"बाबा, घर मे भोजन कर अब तक एक नीद सो चुकता था ।"

मैंने कहा—"यहाँ भोजन भी तो अनेक प्रकार के मिलते है ।"

"चद्रिका ने ऊँघते हुए कहा—"तेल और निमक-मिली जव-चनी की रोटी का स्वाद यहाँ नही मिलता ।"

इसी समय सासुजी का नौकर आया, और बडे गभीर स्वर से आवाज दी—"भोजन तैयार है ।"

भोजन के समय बिलकुल सन्नाटा। एक-एक साँस गिनी जा सकती थी। कोई किसी से बोलता न था। मैं निरपेक्ष भाव से भोजन कर हाथ-मुँह धोकर, अपने शयन-कक्ष मे जाकर लेटा।

घर-भर का भोजन हो जाने पर कल की तरह आज भी श्रीमतीजी आई। लेकिन गति मे छद नही बजे। पान दिया, पर दृष्टि में वह अपनापन न था। मै एक तरफ हट गया। उनको आधी जगह खाली कर दी। बेमन पैर दबाकर वह लेटी। उनका मनोभाव आज क्यों ऐठ गया, कुछ-कुछ मेरी समझ मे आया। पर चुपचाप पडा रहा। सोचा, कमज़ोर दिल अपने आप बोलना शुरू करता है। अंदाज़ा ठीक लड़ा। कुछ देर तक चुपचाप पड़ी रहकर उन्होने कहा—"इत्र की इतनी तेज खुशबू है कि शायद आज आँख नही लगेगी।"

मैंने कहा—"अनभ्यास के कारण। एक कहानी है, तुमने न सुनी होगी। एक मछुआइन थी। एक दिन नदी-किनारे से घर आते रात हो गई। रास्ते मे राजा की फुलवाडी मिली, उसमे एक झोपडी थी, वही सो रही। फूलो की महक से बाग गमक रहा था। मछुआइन रह-रहकर करवट बदल रही थी। आँख नही लग रही थी। फूलो की खुशबू मे उसे तीखापन मालूम दे रहा था। उसे याद आई, उसकी टोकरी है। वह मछलीवाली टोकरी सिरहाने रखकर सोई, तब नीद आई।"

श्रीमतीजी गर्म होकर बोली—"तो मै मछुआइन हूँ ?"

"यह मै कब कहता हूँ।" मैने विनय-पूर्वक कहा—"कि तुम पंडिताइन नही, मछुआइन हो; मैने तो एक बात कही, जो लोगों मे कही जाती है।"

श्रीमतीजी ने बडी समझदार की तरह पूछा—"तो मै भी मछली-लिया खाती हूँ ?"

मैने बहुत ठडे दिल से कहा—"इसमे खाने की कौन-सी बात है ? बात तो सूँघने की है। अपने बाल सूँघो, तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी-कभी मुझे मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ।"

श्रीमतीजी बिगडकर बोली—"तो क्या मै रंडी हूँ, जो हर वक्त बनाव-सिगार के पीछे पड़ी रहूँ।"

"लो," मैने बड़े आश्चर्य से कहा—"ऐसा कौन कहता है, लेकिन तुम बकरी भी तो नही हो कि हर वक़्त गँधाती रहो, न मुझे राज-यक्ष्मा का रोग है, जो सूँघने को मजबूर होऊँ।"

श्रीमतीजी जैसे बिजली के ज़ोर से उठकर बैठ गईं, बोली—"तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो लो, मैं जाती हूँ।"

सिर्फ़ मेरे जवाब के लिये जैसे रुकी रही।

मैंने बड़े स्नेह के स्वर से कहा—"मेरी अकेली इच्छा से तो तुम यहाँ सोती नहीं, तुम अपनी इच्छा की भी सोच लो।"

श्रीमतीजी ने जवाब न दिया, जैसे मैंने बहुत बड़ा अपमान किया हो, इस तरह उठी, और दरवाज़ा खुले छोड़कर चली गई।

मैंने मन में कहा—"आज दूसरा दिन है।"

★

सात

सबेरे जब जगा, तब घर में बड़ी चहल-पहल थी। माले साहब रो रहे थे। सासुजी ने मारा था। ससुरजी खुड्ढी में गिर गए थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आए थे। श्रीमतीजी लाठी लेकर हाँकने गई थी, एक के ऐसी जमाई कि उसकी एक सींग टूट गई। ज्योतिषीजी बुलाए गए कि बतलाएँ, इसका क्या प्रायश्चित्त है। महरी पानी भरने गई थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ में चला गया था। घर का पानी खत्म हो आया था। दूसरी रस्सी न होने के कारण पानी भरना बद था। पड़ोस में सबेरे रस्सी मिली नहीं। लोगों ने कहा, हमारा पानी भर जाय, तब ले जाओ। चंद्रिका सबेरे से लापता था। जब मेरी आँख खुली, तब सुना, सासुजी कह रही है—"जब बिपत आती है, तब एक साथ आती है।"

मुझे इसकी अँगरेजी उक्ति मालूम थी। समझा, उठने के साथ

सासुजी श्रीमतीजीवाली घटना पर मुझी को सुनाकर कह रही है। जमकर धीरे-धीरे उठा। घर मे जितने थे, मब व्यस्त थे। क्रमश एक-एक दुर्घटना मालूम होती गई। चद्रिका का पता न था। ससुरजी को साफ कर जब उनका नौकर आया, उसने कहा—"चद्रिका ने कहा है, मैं गाँव जा रहा हूँ, पैसे पास नही है, रेल की पटरी-पटरी चला जाऊँगा, रास्ता नही जाना, बाबा चिता न करे, कहकर नही जा रहा, क्योकि बाबा नही छोडेगे।" फिर उसने अपनी तरफ से कहा कि मुझसे कह गया है कि मैं किसान आदमी हूँ, मेरी नौकरी न रहेगी, तो मुझे इसकी चिता नही, किसानी और मजदूरी कर खाऊँगा।

मैं समझ गया, रात से ही वायुमंडल बिगडा है, सबेरे किसी ने उससे कुछ कहा होगा। ज़्यादा शका मुझे श्रीमतीजी पर हुई। मैने पूछा—"जब बैल की सीग तोडी गई थी, तब चद्रिका था या नही।"

नौकर ने इशारे से सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

शृंग भग-शाति की बातचीत हो रही थी कि आठ का वक्त हो गया। मुझे मित्रवर कुल्ली की याद आई। तैयार होकर बाहर निकला। कुएँ के पास भरा घडा लिए एक युवती मिली। सगुन देखकर मन प्रसन्न हो गया। कुछ आगे बढ़ने पर दुहकर छोडी हुई एक गाय बछडे को पिलाती हुई मिली। मेरी चाल और तेज़ हुई। कुछ लोग बडे रास्ते पर मिले; मुझे देखकर तारीफ करने लगे—डीलडौल, चाल-चलन की। मैं सयत मुद्रा से पैर बढाए कुल्ली के घर की तरफवाले रास्ते को बढा। देखा, कुल्ली रास्ते पर खड़े थे। देखने के साथ पूरी स्वतंत्रता से कदम उठाते हुए मथुरा में नादिर शाह की सेना की तरह, मेरी तरफ़ बढ़े, जैसे मित्र के भी देश पर पूरी विजय पा ली है। मुझे भरा घडा मिला ही था, भरे हृदय से मैं कुल्ली को देख रहा था।

कुल्ली हृदय से लिपट गए--"आओ, आओ।" मुझे मालूम हुआ, गंगा और यमुना का संगम है।

कुल्ली बड़े आदर से मुझे अपने घर ले गए। एक बड़ा आईना चारो ओर तीन-लड माला मे सजा था। मेरे जाने के साथ-ही-साथ पकडकर सामने जाकर खडे हुए। मैने देखा, विना माला पहने हम दोनो माला पहने हुए है। कुल्ली की कला पर जी मुग्ध हो गया। कुल्ली आईने में ही मुझे देखकर हँसे। देखकर मैं भी मुस्किराया। कुल्ली बहुत प्रसन्न होकर बोले—"अच्छा।"

फिर जल्दी-जल्दी भीतर एक कमरे मे गए, और मिठाई की तश्तरी उठा लाए। पलँग के सामने एक ऊँची चौकी रक्खी थी, उस पर रख दी। फिर जल-भरा लोटा और गिलास वही रख दिया, और मुझसे बड़े विनय स्वरो से खाने के लिये कहा।

मैं खाने लगा। कुल्ली विनीत चितवन से मेरा खाना देखते रहे। भोजन समाप्त होने पर उन्होने हाथ धुलाया-पोंछाया। फिर पान दिया।

पान खाकर मैं पलँग पर बैठा। बडा सुदर पलँग। सुदर गलीचा बिछा। कुल्ली ने इत्र की एक शीशी दिखाई, कहा—"मैंने मँगा लिया है। रूह नही, क्योंकि मालिश तो करनी नही।"

मैं अज्ञातयौवन युवक की तरह कुल्ली को देखने लगा। कुछ देर तक कुल्ली स्तब्ध रहे। मैंने देखा, कुल्ली का चेहरा बहुत विकृत हो गया है। मतलब कुछ मेरी समझ में न आया। कुल्ली अधीरता से एक दफ़ा उचके, लेकिन उचककर वही रह गए। मैं सोच रहा था, इसे कोई रोग है। कुल्ली ने एक दफा भरसक प्रेम की दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा--"तो मैं दरवाज़ा बंद करता हूँ।"

लेकिन आवाज के साथ जैसे लरबराकर रह गए। कुल्ली से

मुझे भय हुआ, इसलिये नही कि कुल्ली मेरा कुछ कर सकता है, बल्कि इसलिये कि कुल्ली के लिये जल्द डॉक्टर दरकार है। घबरा कर मैंने कहा—"क्या डॉक्टर बुला लाऊँ?"

"ओह ! तुम बडे निठुर हो।" कुल्ली ने कहा।

मैं बैठा सोच रहा था कि कुल्ली की इस ऐंठन से मेरी निठुरता का क्या सबध है। सोचकर भी कुछ समझ न पाया।

कुल्ली एकाएक उचके, अब के भरसक ज़ोर लगाकर, यह कहते हुए—"मैं ज़बरदस्ती .."

मुझे हँसी आ गई, खिलखिलाकर हँसने लगा। कुल्ली जहाँ थे, वही फिर रह गए। और, वैसे ही कुएँ मे डूबे हुए जैसे कहा—"मै तुम्हें प्यार करता हूँ।"

मैंने कहा—"प्यार मैं भी तुम्हे करता हूँ।"

कुल्ली सजग होकर तन गए, कहा—"तो फिर आओ।"

मेरी समझ मे न आया कि कुल्ली मुझे बुलाता क्यों है। मैंने कहा—"आया तो हूँ।"

कुल्ली ने मुझसे पूछा—"तो क्या और कही भी नही ... .. ?"

बात एक भी मेरी समझ मे ज्यों-ज्यो नहो आ रही थी, त्यों-त्यो गुस्सा बढ रहा था। बोला—"साफ़-साफ कहो, क्या कहते हो?"

कुल्ली पस्त, जैसे लत्ता हो गए।

"अच्छा, नमस्कर।" कहकर मैं बाहर निकला। वह रूप मुझे बिलकुल पसद नही, इतना ही समझा।

कुल्ली की पहली मुलाकात का अंत हुआ। मैं घर आया। मेरी तरफ से चारो ओर सन्नाटा, जैसे होकर भी न होऊँ। सबको सविनय अवज्ञा करते देखकर मुझे पिताजी की याद आई। मालूम हुआ, पिताजी बहुत अभिज्ञ मनुष्य हैं। उन्होने ससुरजी की चाल का एक

वाक्य मे जवाब दिया, और यहाँ का सारा वायुमडल घहरा उठा; मैं ऐसा हूं कि वाक्य पर वाक्य चढते हैं, मैं जवाब नही दे पाता ।

बिलकुल व्यवहार की वाणी मे सासुजी ने पूछा—"भैया, कहाँ गए थे ?"

मैंने उस समय झूठ बोलना पाप समझा । कहा—"कुल्ली के यहाँ ।" अधिक बढाकर कहना भी उचित नही मालूम दिया ।

सासुजी मुँह की ओर देखकर रह गई । शाम से ही वह निःशंक थी । श्रीमतीजी के उठ जाने के बाद से तो शका का लेश न रह गया था । सबेरे से नि.शकता के निर्भय आचरण भी शुरू हो गए थे । मेरे जाने तक गति मे चारुता आने लगी थी ।

मैंने सोचा, हौसला तोड दिया जाय । चद्रिका के चले जाने से मैं लँगडा हो गया हूँ । कहा—बैल की सीग ही नही तोडी गई, मेरा पैर भी तोडा गया है । बैल की सीग के लिये तो आपने प्रायश्चित्त किया-कराया, मेरे पैर के लिये क्या इलाज सोचा है ?"

सासुजी पैर पकडकर बैठ गई । "कहाँ, देखूं ?"

मैने कहा—"अपनी बेटी को बुलाइए ।"

सासुजी ने कहा—"बिटिया, रात को पैर दबाने के वक़्त तुमने भैया की नस तिडका दी है ? यहाँ आओ । हमसे यह क्यो नही कहा ?"

"कहाँ ?" शकित दृष्टि से देखती हुई श्रीमतीजी आई ।

फुटबाल खेलते-खेलते मेरे दाहने अँगूठे में गुम्मड़ पड गया था, बाएँ हाथ से दाहना अँगूठा मोटा मालूम देता है । सासुजी को कुछ नज़र न आया, मोटा अँगूठा देख पड़ा, तो पकड़कर कहा—"यह है ?" फिर स्वगत कहा—"यही होगा ।" फिर अपनी बेटी से बोली—"देखो तो बिटिया, उससे मोटा जान पड़ता है न ?"

उनकी लड़की चिंतित भाव से बोली—"हाँ।" फिर मा की अनुवर्तिता की। वह भी पकडकर देखने लगी।

सासुजी ने कहा—"क्यो भैया, हल्दी-चूना गर्म कर दे ?"

मैंने सोचा, जिसने पैर पकड़ा है, उसे माफ करना चाहिए। इस समय चद्रिका की बात रहने दी जाय। वैराग्य से कहा—"रहने दीजिए।"

बड़े स्नेह से सासुजी ने कहा—"नही, रहने क्या दिया जाय ? जाओ तो बिटिया, हल्दी-चूना गर्म करो।"

मैं, जो सुलह हो जाय जग होकर, सोच रहा था। इसलिये रहस्य को बाद मे ही रहने दिया। श्रीमतीजी हल्दी-चूना गर्म करने लगी।

★

आठ

दूसरे दिन रूह की मालिश के लिये कहने पर सासुजी ने कहा—
"हमारे यहाँ रूह की मालिश नही चल सकती। हम इतने बडे आदमी नही। कड़ुआ तेल लगाओ। खाया तो घी जाय, जो रुपए मे सेर-भर मिलता है, और लगाई रूह, जो अस्सी रुपए तोले आती है?"

मैंने सोचा, अब गवही ख़त्म है। लेकिन श्रीमतीजी का आकर्षण जबरदस्त था। यद्यपि 'चर्पट-पंजरिका'-स्तोत्र कई बार उन्हे सुना-सुनाकर पाठ किया, फिर भी बैराग्य की मात्रा श्रीमतीजी ने मुझमें कभी नही देखी। वह भी मेरे चारो ओर धोखा-ही-धोखा देखने लगी। ललित-कला-विधि मे मैं कालिदास नही था, उन्होने मेरा शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया।

रुपए ख़त्म हो चुके थे। रूह अपनी गाँठ से नही मँगा सकता था। सासुजी इस ताक मे थी, मैं कितने दफ़े मँगाकर मालिश

कराता हूँ, देखें; मेरे पिताजी ने खर्च के रुपए दिए ही होगे ; हृदय में निश्चय था, सब झोल है। रूह को मालिश कराते उन्होने किसी बडे रईस को भी नही देखा-सुना।

मेरा दम घुट रहा था। रह-रहकर मन मे उठता था, पिताजी की तरह दूसरी शादी की बात कहूँ। लेकिन कुल्ली की तरह दिल से बैठ जाता था। यद्यपि वैराग्योद्दीपक "का ते कान्ता कस्ते पुत्र" गाया करता था, फिर भी श्रीमतीजी दिल से अच्छी तरह जानती थी, विना काता के एक रात इनकी पार नही हो सकती, और आधुनिक प्रेमियो की तरह जिस शब्द-न्यास से यह मुझसे पेश आते हैं, यह दूसरा विवाह हरगिज़ न करेगे। यानी मैं उन्हे छोड नही सकता। बात सही थी। दिन-भर विराग रहता था, रात को श्रीमतीजी को देखने के साथ अनुराग मे परिणत हो जाता। श्रीमतीजी मौन साधे हुए अपने मनोभावो को मारे रहती थी।

एक दिन मुझसे न रह गया, हालाँकि इसलिये नही कि मैं श्रीमती-जी के मनोभाव समझता था, बल्कि इसलिये कि श्रीमतीजी मेरे अधिकार मे पूरी तरह नही आ रही थी, अर्थात् शिष्यत्व स्वीकार नही कर रही थी। वह समझती थी, मै और जो कुछ भी जानता होऊँ, हिंदी का पूरा गँवार हूँ, हिंदी का वैसा गँवार नही, जैसा पढे-लिखे सैकडा पीछे निन्यान्नबे होते हैं—बिलकुल ठोस मूर्ख। मुझे श्रीमतीजी की विद्या की थाह नही थी।

एक दिन बात लड गई। मैंने कहा—"तुम हिंदी हिंदी करती हो, हिंदी में क्या है ?"

उन्होने कहा—"जब तुम्हें आती ही नही, तब कुछ नही है।"

मैंने कहा—"हिंदी मुझे नही आती ?"

उन्होने कहा—"यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाडी

बोल लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढी है, बस। तुम खड़ी बोली का क्या जानते हो ?"

तब मैंने खडी बोली का नाम भी नही सुना था। प० महावीर-प्रसादजी द्विवेदी, प० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरण-जी गुप्त आदि तब मेरे लिये स्वप्न मे भी नही थे, जैसे आज हैं। श्रीमतीजी पूरे उच्छ्वास से खडी बोली के ऐसे धुरधर साहित्यिकों के बीसियो नाम गिनाती गई, जैसे लेख मे उद्धरण पर उद्धरण देख-कर पाठक लेखक की विद्वता और विचारो की उच्चता पर दग हो जाता है, वैसे ही मैं भी खडी बोली के साहित्यिको के नाम-मात्र से श्रीमतीजी की खडी बोली के ज्ञान पर जहाँ का वहीं रह गया। अब समझता हूँ, 'सहस्रनाम' का प्रभाव इतना क्यो है।

मैंने निश्चय किया कि अब यहाँ मेरी दाल न गलेगी। पाँच-छ रोज हो गए। रूह की मालिश नही कराई। सासुजी जैसे दिन गिन रही थी, इधर श्रीमतीजी को खडी बोली का ज्ञान दिन-पर-दिन ग़ालिब हो रहा था। सोचा, घर चला जाऊँगा। लेकिन मारे प्रेम के स्टेशन की तरफ देखने की इच्छा नही होती थी। इसी समय किसी एक उपलक्ष मे गाने का आयोजन हुआ। सासुजी ने एक दिन अपनी पुत्री के सगीत की तारीफ की थी। कहा था—"शहर में कोई लडकी और औरत मुकाबला नही कर सकती।" मैंने सोचा, आज सुन लूँगा, चलते-चलते श्रवण-रध्र सार्थक हो जायँगे। मज-लिस लगी। ढोलक बजने लगी, लेकिन औरतों की जैसी 'उदुम-धुसुक, उदुम धुसुक' नही। मैंने सोचा, कुछ आनद आएगा—'टिकारा वदन्ति ?' पुरुष भी जमने लगे। मनचले, कुछ नही, तो दूसरे की औरत का हाथ-पैर ही देख लेनेवाले। भीतर से पान आने लगे। पान-तंबाकू खाकर एक-एक पीक थूकते हुए घर भ्रष्ट करनेवाले

औरतो की आलोचना करने लगे। गाना शुरू हुआ। श्रीगणेश गजलो से। जो औरत गजल गाना नही जानती, उसकी आफ़त। गजल गानेवालियो से प्रभावित। अक्सर गजल न जाननेवाली पुरानी वृद्धाएँ थी, भजन गानेवाली; उन पर नवीनाओ का वैसा ही रोब था, जैसा आजकल साहित्य और समाज मे देखा जाता है।

मुझे ताज्जुब यह था कि अँगरेजो के वक्त ही अँगरेजी इतना अपना ली गई कि चाल-ढाल, बात-चीत, अदब-कायदा, खान-पान, उठक-बैठक, हेत-व्यवहार, यहाँ तक कि राजनीतिक विचारो तक मे अपना ली गई, और इतनी जल्दी पर मुसलमानो के वक्त फारसी और हाफिज की गजलों के लिये हमारी देवियों ने इतनी देर क्यो की, जिस तरह आज की बी० ए० पास देवी धडल्ले से घूमती है, अँगरेजी बोलती है, योरप मे कोर्टशिप करती है, पियानो बजाती है, और पिछडी हुई देश की स्त्रियो को शिक्षा देती है, उसी तरह हमारी प्राचीनाओ ने गजलों को क्यो नही अपनाया? चाहिए तो यह था कि अपनी सांस्कृतिक विभूति अपनी बेटियो को देती। मालूम हुआ कि वे विचारो मे मार्जित और उदार नही थी, इसलिये उनका सास्कृतिक हाजमा बिगडा था। यह बात राजा राममोहनराय को सबसे पहले मालूम हुई। खैर, अँगरेजो अज्ञेयो का उद्धार करे; मैं तन्मय होकर गज़लें सुनने लगा।

गाने के साथ-साथ बाहर आलोचना भी चलने लगी—कौन गा रही है, यानी गाना उठाया हुआ किसका है, यो साथ-साथ कितने ही मँजे और नौसिखिए गले चलते थे। लोग गज़लों और गज़ल गानेवालियों को चाहते थे। उनके नमक के कारण, पर उनके चरित्र से उन्हे घृणा थी। अब तक श्रीमतीजी कवि-सम्मेलन के बड़े कवि की तरह बैठी थी। मुझे नही मालूम था कि लोग एक के बाद

दूसरे उन्ही के लिये टूटे रहे है। खैर, उन्होने गाया। गनीमत यह कि पहले भजन गाया, वह भी साहित्यिक गीतों का शिरोभूषण—'श्रीरामचद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणम्।" लोग साँस रोककर सुनने लगे। "कदर्प अगणित-अमित-छवि-नवनील-नीरज-सुदरम्" की जगह जान पडने लगा, गले मे मृदग बज रहा है। मेरा दम उखड गया। यह इतनी है, बगाल से पाए सस्कार के प्रकाश मे मैं न देख पाया।

इसके बाद एक गजल हुई—"अगर है चाह मिलने की, तो हर-दम लौ लगाता जा।" यह त्याग को बारूद भडका, तो लोगो मे प्रेम पैदा हो गया, विना जनेऊ तोडे, न-जाने क्यो ? एक दूसरे से कनखियो से बाते करने लगे। मैंने सोचा, यह मेरे प्रेम पर है, पर फिर शका हुई, क्योकि मैं मिल चुका था। लोग मुस्किराते हुए अपने-अपने प्रेम की थाह ले रहे थे।

इसके बाद दादरा शुरू हुआ—

"सासुजी का छोकडा, मेरी ठोढी पे रख दिया हाथ।
बहुत गम खा गई, नही चाँटे लगाती दो - चार।"

एक श्रोता बहुत बिगडे, बोले—अपने मर्द को चाँटे लगाती ? वैसा ही मर्द होगा।"

उन्हे यह खयाल नही था कि उनका मर्द सामने बैठा है। दूसरे ने मेरी तरफ देखकर मुस्किराकर कहा—"यह मर्द के लिये नही, देवर के लिये है। सासुजी का छोकड़ा देवर भी हो सकता है।"

तीसरे ने कहा—"देवर तो है ही।" मेरी जान मे जान आई।

कुछ देर और होकर गाना बद हुआ। लोग जम्हाई ले-लेकर उठे। स्त्रियाँ भी एक-एक कर निकलने लगी। थोड़ी देर मे घर अपने ही लोगो का रह गया। श्रीमतीजी का गाना अच्छा, हिदी

अच्छी। मेरी इन दोनो विषयो की तालो तब तक नही खुली। ससार मे हारने की-सी लाज नही, स्त्री सृष्टि की सबसे बड़ी हार है, पुरुष की जीत की सबसे बड़ी प्रमाण-प्रतिमा, इसमे मैं हारा। एकात मे पिताजी को एक चिट्ठी लिखी, "मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, लिखने-पढने का नुकसान हो रहा है। आप जब चाहे, पानी बदल-कर आएँ; मैं प्रसन्न हूँ, यहाँ कुशल है।" चिट्ठी डाकखाने छोड़ी, और बिस्तरा बाँधकर तैयार होने लगा।

सासुजी ने पूछा—"भैया, बिस्तरा क्यों बाँध रहे हो ?"

मैंने कहा—"कलकत्ता जा रहा हूँ।"

सासुजी का रग उड गया। गाने के बाद अपनी लडकी की गले-बाजी पर मुझसे राय लेनेवाली थी, एकाएक हौसला जाता रहा। कहा—"बाँधना-खोलना हमारा काम है, नौकर है, कलकत्ता अभी कैसे जा सकते हो ? तुम्हारे पिताजी भी क्या कहेगे ? यहाँ के लोग समझेंगे—दामाद गवही आया था, हफ्ते से ज्यादा न रख सकी, हमारी बेइज्जती होगी।"

मैंने कहा—"बेइज्ज़ती एक ही ओर की रहने दी जाय।"

सासुजी ने कहा—"तुम्हारी कैसी बेइज़्ज़ती ?"

"अपनी बेइज्ज़ती की बात कोई अपनी ज़बान से नहीं कहता।" मैंने कहा।

सासुजी सोचकर जैसे समझ गई, यानी कुल्लीवाली बात के लिये उन्होने सोचा कि वे लोग समझ गए, यह मुझे मालूम हो गया है। बोली—"मैंने तो बहुत पहले तुम्हें मना किया था कि कुल्ली का साथ अच्छा नही।"

मैंने कहा—"कुल्ली का साथ अच्छा नही या आपकी बेटी का, यह सब रहने दीजिए।"

मैंने तो सीधे ढंग से कहा था, लेकिन सासुजी एकाएक उच्च स्वर से रोने लगी। उनके साथ उनकी बेटी भी, छोटी होने के कारण मंद स्वर से। भगवान् जाने इस बीच पिताजी के लिये क्या सोचा हो। घबराकर बोली—"मेरी बेटी तो भैया, तुम्हें भगवान् मानती है। रात का वक्त है, झूठ नहीं कहूँगी, सामने आग जल रही है, मेरे मुँह में आग लगे, तुम कहो, तो मेरी लड़की तुम्हारी बात पर अंगार खा सकती है। और, आज ही गाँव-भर की औरतें आई थीं, उसी की वाहवाही रही, हर बात पर, यों चाहे, जो कहो।"

"इसी के लिये तो जा रहा हूँ।" मैंने कहा।

सासुजी चौंकी हुई देखने लगी। मैं फिर बिस्तरा बाँधने लगा।

ससुराल में बिस्तरा बाँधना नाराजगी का कारण है। सासुजी के मन में आया—रूह नहीं मँगाई गई, इसलिये जा रहे हैं। बोली—"दाम नहीं थे, इसलिये रूह नहीं मँगाई, कल वह भी आ जाती है।"

मैंने कहा—"वह तो बाहरी रूह है, यहाँ भीतरी फना है।"

सासुजी प्रश्न-भरी चिंतित दृष्टि से देखती रहीं।

मैंने कहा—"पढ़ाई पड़ी है। फिर तैयार न कर पाऊँगा।"

आश्वस्थ होकर सासुजी ने नौकर को बुलाया। उसे बिस्तरा बाँधने के लिये कहा। मुझसे सस्नेह बोली—"कलकत्ता जा रहे हो, ऐं, मैंने सोचा था, कलकत्ते का बहाना है, घूमकर फिर गाँव जाओगे, और गाँव में जब कि प्लेग है, और ‥ ‥‥ कलकत्ता पढ़ाई के लिये जा रहे हो, हाँ, आगे की फिकिर तो करनी ही है।"

बिस्तरा बँध गया। ताँगा आया। रायबरेलीवाली गाड़ी के समय पर सासु और ससुरजी के पैर छूकर मैं बिदा हुआ।

✶

नौ

पाँच साल बीत गए। कुल्ली मुझसे नही मिले कई बार ससुराल गया-आया। मैं भी नही मिला। एक आग दिल मे लगी थी—मैंने हिंदी नही पढी। बगाल मे हिंदी का जानकार नही था, जहाँ मैं था—देहात मे। राजा के सिपाही जो हिंदी जानते थे, वह मुझे मालूम थी—व्रजभाषा। खड़ी बोली के लिये अडचन पडी। तब हिंदी की दो पत्रिकाएँ थी–'सरस्वती' और 'मर्यादा'। दोना मँगाने लगा। 'सरस्वती' चेहरे की भी सरस्वती थो; 'मर्यादा' अमर्यादा। पढकर भाव अनायास समझने लगा। पर लिखने मे अडचन पडती थी। व्रजभाषा या अवधी, जो घर की ज़बान थी, खडी बोली के व्याकरण से भिन्न है। 'उइ कहेन' और 'उन्होने कहा' एक नही। यह 'ने' खटकता था। जो केवल भारतीय संस्कृति के शिक्षित हैं, उनके लिये 'ने' शूल है। 'ने' के प्रयोग भी मालूम न थे। लेकिन मिहनत सब कुछ कर सकती है। मैं रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक

'सरस्वती' लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अँगरेजी और बँगला-व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगा। जहाँ 'कहा', 'कहे', 'कही' क्रिया के प्रयोग आते थे, वहाँ गौर से कारण की तलाश करने लगा। यह संस्कृत, अँगरेजी और बँगला-व्याकरण में नही। मुझे कारण भी मिला। वह आनद कारण की प्राप्ति के बाद जो हुआ, ब्रह्मा-नद से कम नही कहा जा सकता।

ऐसी अनेक और अड़चनें पार की। आचार्य द्विवेदीजी को गुरु माना; लेकिन शिक्षा अर्जुन की तरह नही—एकलव्य की तरह पाई। व्याकरण की शिक्षा पूरी करने से पहले 'जुही की कली' लिखी थी, जो व्याकरण की दृष्टि से बाद को पूरी उतरी। जिस तरह संसार के बड़े-बड़े कवियो के लिये कहा जाता है कि सात-आठ साल की उम्र से कविता लिखने लगे थे, उसी तरह अल्प-बुद्धि मैं भी लिखने लगा था। लेकिन तब, बँगला मे लिखता था। 'दरिद्राणा मनोरथ' जैसे वे भी उठकर, कागज की पक्तियो मे खिलकर, अज्ञात के हृदय मे मिल गई। उनका कोई चिह्न शेष नही। सोलह-सत्रह साल की उम्र से भाग्य मे जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौडा था, जीव के पीछे नही। इसीलिये शायद बच जाऊँगा। जीव के पीछे पड़नेवाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्र चमत्कार और जादू से प्रभावित होकर जीवन से हाथ धोता है, जीवन के पीछे चलनेवाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नही होता, अस्तु।

मकतब की शिक्षा अर्थकरी समझकर मैंने छोड़ दी थी; तब 'अर्थ' का व्यापक अर्थ मुझे मालूम नही था। इसीलिये जड़ार्थ से मेरा हमेशा छत्तीस का संबध रहा। लेकिन विशाल 'अर्थ' जिसके

लिये, जिसे न जानकर भी, मैंने अर्थकरत्व छोडा था, मेरे विशाल-हृदय मित्रो से मुझे प्राप्त होता रहा। पर जब की बात लिख रहा हूँ, तब मैं उसी एस्टेट मे एक मामूली नौकर हुआ। चिट्ठी-पत्री, हिसाब-किताब अच्छा नही लगता था। पर लाचारी थी, इसी समय राजा साहब को अपना थिएटर खोलने का शौक हुआ। बड़े आदमी की इच्छा अपूर्ण नही रहती। कचहरी के बाबू नायक-नट बनने के लिये बुलाए गए। सबके साथ मैं भी गया। मुझे एक बहुत मामूली सस्कृत का गाना दिया गया, इसलिये कि बगालियो मे अधिकाश सस्कृत का शुद्ध उच्चारण नही कर सकते।

मैंने श्लोक याद कर रिहर्सल के दिन गाया। राजा साहब पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होने मेरे लिये गाना सीखने का प्रबध कर दिया। धीरे-धीरे कला की कृपा से मेरी लोकप्रियता बढ चली, साथ दूसरो की ईर्ष्या भी।

इसी समय इनफ्लुएजा का प्रकोप हुआ। पिताजी एक साल पहले गुजर चुके थे। इसीलिये नौकरी की थी। नही तो हर लडके की तरह दुनिया को सुखमय देखते रहने के स्वप्न लिए रहता; कम-से-कम लिए रहूगा, यही सोचता था।

तार आया—"तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, अतिम मुलाक़ात के लिये आओ।" मेरी उम्र तब बाईस साल थी। स्त्री का प्यार उसी समय मालूम दिया, जब वह स्त्रीत्व छोडने को थी। अखबारों से मृत्यु की भयकरता मालूम हो चुकी थी। गगा के किनारे आकर प्रत्यक्ष की। गगा मे लाशो का ही जैसे प्रवाह हो। ससुराल जाने पर मालूम हुआ, स्त्री गुजर चुकी है; दादाजाद बडे भाई देखने के लिये आकर बीमार होकर घर गए हैं। मैं दूसरे ही दिन घर के लिये रवाना हुआ। जाते हुए रास्ते मे देखा, मेरे दादाजाद बड़े

भाई साहब की लाश जा रही है। रास्ते मे चक्कर आ गया। सिर पकड़कर बैठ गया।

घर जाने पर भाभी बीमार पड़ी दिखी। पूछा—"तुम्हारे दादा को कितनी दूर ले गए होगे ?" मै चुप हो गया। उनके चार लडके और एक दूध पीती लडकी थी। उस समय बडा लडका मेरे साथ रहता था, बगाल में, पढता था। घर मे चाचाजी अभिभावक थे। भाई साहब की लाश निकलने के साथ चाचाजी भी बीमार पडे। मुझे देखकर कहा—"तू यहाँ क्यों आया ?"

पारिवारिक स्नेह का वह दृश्य कितना करुण और हृदयद्रावक था, क्या कहूँ ? स्त्री और दादा के वियोग के बाद हृदय पत्थर हो गया। रस का लेश न था। मैंने कहा—"आप अच्छे हो जायँ, तो सबको लेकर बगाल चलूं।"

उतनी उम्र के बाद यह मेरा सेवा का पहला वक्त था। तब से अब तक किसी-न-किसी रूप से फ़ुर्सत नहीं मिली। दादा के गुज़रने के तीसरे दिन भाभी गुजरी। उनकी दूध-पीती लडकी बीमार थी। रात को उसे साथ लेकर सोया। बिल्ली रात-भर आफत किए रही। सुबह उसके प्राण निकल गए। नदी के किनारे उसे ले जाकर गाडा। फिर चाचाजी ने प्रयाण किया। गाड़ी गगा तक जैसे लाश ही ढोती रही। भाभी के तीन लडके बीमार पडे। किसी तरह सेवा-शुश्रूषा से अच्छे हुए। इस समय का अनुभव जीवन का विचित्र अनुभव है। देखते-देखते घर साफ़ हो गया। जितने उपार्जन और काम करनेवाले आदमी थे, साफ हो गए। चार लडके दादा के, दो मेरे। दादा के सबसे बड़े लड़के की उम्र १५ साल, मेरी सबसे छोटी लडकी साल-भर की। चारो ओर अँधेरा नज़र आता था।

घर से फ़ुर्सत पाने पर मैं ससुराल गया। इतने दु:ख और वेदना के भीतर भी मन की विजय रही। रोज़ गगा देखने जाया करता था। एक ऊँचे टीले पर बैठकर लाशो का दृश्य देखता था। मन की अवस्था बयान से बाहर। डलमऊ का अवधूत-टीला काफी ऊँचा, मशहूर जगह है। वहाँ गगाजी ने एक मोड ली है। लाशे इकट्ठी थी। उसी पर बैठकर घटो वह दृश्य देखा करता था। कभी अवधूत की याद आती थी, कभी ससार की नश्वरता की।

एक दिन पूछ-पूछकर कुल्ली वहाँ पहुँचे। पहले दुखी थे, मेरे लिये समवेदना लिए हुए थे, देखकर मुस्किरा दिए—बडी निर्मल मुस्कान। मैंने देखा—यह सच्चा मित्र है।

कुल्ली ने कहा—' मै जानता हूँ, आप मनोहर को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह को ही जगह मार देता है, होश कराने के लिये। आप मुझसे ज्यादा समझदार है, और मैं आपको क्या समझाऊँ? पर यह निश्चित रूप से समझिएगा, भोग होता है अच्छा वह है, जिसका अत अच्छा हो।"

मैं अवधूत की कुटी की गड़ी ईंटे देख रहा था। कुल्ली ने कहा—"यहाँ आप क्यो आए है? क्योंकि मृत्यु का दृश्य आपने देखा है। मृत्यु के बाद मन शाति चाहता है। जो मर गए है, वे भी शाति प्राप्त कर चुके हैं। यह अवधूत-टीला है। बहुत पहले यहाँ एक अवधूत रहते थे। बस्ती से यह जगह कितनी दूर है। मरघट से भी दूर है, यानी अवधूत मृत्यु के बाद जैसे पहुँचे हों। यहाँ जैसे शांति-ही-शांति हो।"

कुल्ली की बात बडी भली मालूम दी। बडा सुदर तत्व जैसे निहित था। मुझे बडा आश्वासन मिला। ऐसी बात इधर मैंने किसी से नही सुनी थी।

कुल्ली ने कहा—"चलिए, रामगिरि महाराज के मठ में दर्शन कीजिए। आप वहाँ हो तो आए होंगे ?"

मैंने कहा—"नहीं।"

कुल्ली उठे। उनके साथ मैं भी चला गया।

★

द
स

इसके बाद मैं अपनी नौकरी पर चला गया। कुछ दिन नौकरी करने के बाद एक दुर्घटना हुई। एक साधु आए। एक पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, धूनी रमाए, चिमटा गाड़े। मेरी निगाह नए ढंग की थी। साधु के संबंध में भी निगाह नई हो गई थी, स्वामी विवेकानंदजी और स्वामी रामतीर्थजी की बातें सुनकर, किताबें पढ़कर। साधु का संबंध पारलौकिक साधना से होता है, साधना प्राचीन ढंग की तरह-तरह की हैं। मैं बिलकुल आधुनिक था। आदमी सत्य की प्राप्ति के बाद समझने की अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि सत्य स्वयं तब समझ के तौर पर मिल जाता है। उस पर आधुनिकता और प्राचीनता के नाम का केवल प्रभाव पड़ता है। मैंने जिन साधुओं को पढ़ा था, उन्होंने नशे के खिलाफ़ बहुत कुछ लिखा था। पर जो साधु नशा करते हैं, वे रास्तों पर मारे-मारे फिरते हैं स्वामी विवेकानंदजी या स्वामी रामतीर्थजी की तरह अँगरेज़ीदाँ नहीं, न

अँगरेजीदाँ उनके शिष्य हैं, जो गाँजे की चिलम से भड़क जायँगे। ऊँचे सत्य में विद्या की भी गुंजाइश नहीं रहती, शब्द खत्म हो जाता है, लिहाजा रास्तों पर घूमनेवाले थकान की प्रतिक्रिया मिटाने के लिये नशा करते है। जिस तरह रोग मे ज़हर का प्रयोग चलता है, उसी तरह जीवन के नाश मे, प्रतिक्रिया मे वे नशा करते हैं। उनके पास चरित्र का मूल्य है, पर उस चरित्र का अर्थ ऐसा नही कि आदमी सात रोज पाखाना न जाय, या पाँच रोज़ पेशाब न करे, तो सिद्ध है।

अँगरेजीदाँ गृहस्थ अँगरेजीदाँ साधु ही खोजता है, क्योंकि योरप की, अमेरिका की बाते होनी चाहिए, इस पर उनकी क्या राय है। सत्य के पास योरप, अमेरिका नही। रास्तेवाले साधु यहाँ अँगरेजीदाँ साधुओ को ही धोखा देता हुआ समझते है। मैंने कइयो को कहते सुना है, अपना-अपना गढ बनाए हुए है। खैर, यह साधु अनेक अर्थों मे साधु थे। इनकी इच्छा थी, जगन्नाथजी जायँगे, किराया मिल जाय। राजा साहब के हाउसहोल्ड सुपरिंटेडेट साहब इन पर प्रसन्न थे। उन्होने राजा साहब से इनकी साधुता की तारीफ़ करते हुए इनके किराए की प्रार्थना की। राजा साहब ने सुन लिया।

कचहरी हो जाने पर शाम से दस बजे तक मैं राजा साहब के पास रहता था। उन्हे गाने-बजाने का शौक था। अच्छा मृदग बजाते थे। जाने पर उन्होंने कहा—"एक साधु आए है; देख आओ।"

राजा लोग एक विषय को अनेक मुखों से सुनते है, तब राय कायम करते है, इसलिये कि उनके कान-ही-कान है, आँखें सब जगह नहीं पहुँचती। मैंने राजभक्ति की परा काष्ठा दिखलाते हुए उसी वक़्त कहा—"हुज़ूर, राजकोष का रुपया इस तरह नही खर्च होना चाहिए।"

तब मेरे मस्तिष्क मे अनेक तरहे थी, जैसी उपयोगितावादी में होती हैं। राजा साहब सिर्फ मुस्किराए। मैं कुछ नही समझा। लेकिन उनकी आज्ञा की उपयोगिता समझता था, क्योंकि नौकर था। प्रणाम करके साधु के पास चला। मन में यह निश्चय लिए हुए कि कोष की एक कौडी नही जानी चाहिए। मन मे यह भाव होने के कारण साधु के प्रति रूप कैसा था, कहने की आवश्यकता नही।

मुझे देखते ही साधु ने कहा—"आइए।"

मैंने मन मे कहा—"यही तो ठग-विद्या है।" खुलकर कहा—"तुम काम क्यो नही करते ?"

साधु ने मुझे आप कहा था, मैने 'तुम' कहा, तब मुझे यह नही मालूम था—ईश्वर की प्राप्ति के लिये निकला हुआ मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति के बाद दग्ध-कर्म हो जाता है। उसके मन मे केवल ईश्वर रहता है।

साधु ने कहा—"मैं 'आप' कहता हूँ, आप 'तुम' कहते है। मैं क्या काम करूँ ?"

मेरी 'आप' कहने की प्रवृत्ति नही हुई। मैंने कहा—"तुम्हे संसार मे कोई काम ही नही मिलता ?"

साधु ने कहा—"आप फिर 'तुम' कहते हैं। यह सब काम कौन करता है ?"

मुझे मालूम हुआ, यह पूरा ठग है। क्योकि लिखी किताबो में साधुओं के हथकंडे और तरह-तरह की शिकायतें पढी थी। कहा—"तुम्हें रुपया नही मिलेगा।"

साधु ने कहा—"होश में आ।" और चिमटा ज़ोर से ज़मीन मे गाड़ दिया।

मुझे मालूम हुआ, वह चिमटा मेरे सिर में समा गया। गर्दन

झुक गई। लेकिन मुझमे मामूली आग नही थी। मेरा अभिप्राय असत्य था। फिर भी साधु के प्रति श्रद्धा न निकली।

साधु ने जैसे सिर पर सवार होकर पूछा—"तू राजा है ?"

जो अपराध मैं कर रहा था, वही साधु करने लगे, क्योकि मैंने साधु को 'तू' नही कहा था, 'तुम' कहा था। पर अभी मैं अपने को सँभाल रहा था, जैसे लड़नेवाला नीचे चला गया हो, हार न खाई हो। सँभलकर कहा—"नही, मैं राजा नही हूँ।"

साधु व्यग्य कर रहा था, उसका राजा का अर्थ, राम था; मेरा केवल सीधा, वही राजा, जहाँ से मैं आया था।

साधु ने कहा—"तू नौकर है तो नौकर की तरह बाते क्यो नही करता ?"

साधु फिर भूला। नौकर भी राम है। खास तौर से मैं महावीर को अधिक प्यार करता था, राम को कम।

साधु चाहता था, मैं अपनी पकड छोड़ दूं, तो वह होश दे दे, लेकिन मेरी पकड मे नौकर नही था, साक्षात् महावीर थे। पकड़ छुडाने के लिये साधु ने कहा—"तेरी नौकरी नही रहेगी।"

अगर मैं यहाँ करुण हुआ होता, तो साधु ने बाजी मारी होती। मैंने कहा—"महाराज, तब तो मैं बच जाऊँ।" यह महावीर की ही वाणी थी, राम के प्रति। तब मैं यह कुछ नहीं जानता था।

साधु के होश उड़ गए। यह नौकरी के लिये आग्रह नही था, फिर मेरे सिर उतने बच्चो का बोझ था।

साधु रोने लगे, कहा—"अरे, तेरे लिये मैंने घर-बार छोड दिया, और तू मुझे सताता फिरता है ?"

अब मैं भी समझा। मुझे ज्योति भी दिखी। पहले 'जुही की

कली' लिखते वक्त दिखी थी, तब नहीं समझा था। अब के एक साधु ने पहचान करा दी।

मैं चलने लगा, तो साधु ने कहा—"तो चलो, चलें।"

लेकिन मैंने संसार को तरफ खींचा, क्योंकि ज्ञान के साथ कर्मकांड जो बाकी था, उसकी ओर आकर्षण हुआ। इस समय साधु को वैसा ही कष्ट हुआ, जैसा मुझे हुआ था। बड़ी ही करुण ध्वनि की, जैसे बदन टूट रहा हो।

राजा साहब के पास गया, तब सब भूल गया, जड़ राजा का भूत सवार हो गया। राजा साहब ने पूछा—"कैसे साधु है ?" मैंने कहा—"ऐसे आदमी को रुपए नहीं देने चाहिए।" राजा साहब चुप हो गए।

सुबह सुपरिंटेंडेंट साहब फिर गए, और बीस रुपए की मंज़ूरी करा ली। रुपए लेकर सुपरिंटेंडेंट साहब गए। पर हाथ जो बढ़े, वे दंभ के हाथ थे। साधु ने कहा—"मैं रुपए नहीं लूंगा। कल राजा आए थे। मैंने उन्हें नाराज कर दिया है। मैं जाता हूँ।" कहकर अपना चिमटा वहीं फेंक दिया, और चले गए।

सुपरिंटेंडेंट साहब ने रास्ता रोककर कहा—"महाराज, वह राजा नहीं था, वह तो एक मामूली नौकर है।"

साधु ने कहा—"तू नहीं समझता, वह राजा था।"

सुपरिंटेंडेंट साहब मुँह फैलाकर देखने लगे। साधु चले गए।

कुछ देर बाद मैं भी उस रास्ते से गुज़रा। सुपरिंटेंडेंट साहब ने कहा—"तुमने कल साधु से क्या कहा था—"मैं राजा हूँ ?"

"नहीं, दादा", मैंने कहा—"मैंने ऐसा तो नहीं कहा।"

सुपरिंटेंडेंट मुझसे भी बड़े राजभक्त थे। कहा—"तुमने कहा है। साधु ने रुपए नहीं लिए, अपना चिमटा फेंककर चला गया। मैं महाराज से अभी रिपोर्ट करता हूँ।"

कौन समझता है, वह निश्छल नत जन विश्व के सामने नत है—वह दादा कहनेवाला और है। यह सलाम करनेवाला नहीं।

दादा ने राजा साहब से रिपोर्ट की, बड़े उदात्त शब्दों में। सुनी बात पर जैसी अतिशयोक्ति होती है।

मेरे जाने पर सस्नेह राजा साहब ने कहा—"तुमने साधु से कहा था—"मैं राजा हूं ?"

उत्तर उस तरह मुझसे न देते बना, जिस तरह देना चाहिए था, क्योंकि मैं भी राजा को साक्षात् पुरुषोत्तम नहीं देख रहा था। कहा—"हाँ, मैंने कहा, राजा का नौकर राजा नहीं तो क्या है ?"

यह अद्वैतवाद राजा समझते थे। भारत की नौकरशाही का यही अर्थ है।

उस समय के लिये निष्कृति मिली। कठिन संसार की उलझन साथ ही थी। एक दिन मैं राजा साहब के यहाँ से अपने डेरे जा रहा था, रात के ग्यारह बजे होंगे। सुपरिंटेंडेंट साहब कचहरी नहीं गए थे। लेकिन हाथीखाने के पास, जो जगह उनके मकान से मील-भर है, मुझे मिले। वह शराब पीते हैं, यह मशहूर बात थी, शराब पीनेवाला और भी बहुत कुछ करता है। संसार का अपना एक चरित्र है—दिखाऊ। उसके प्रतिकूल कुछ होने पर घबराहट होती है। सुपरिंटेंडेंट साहब को रात ग्यारह बजे देखने के साथ मैं चौंका, वह भी चौंके। वह मेरी शिकायत कर चुके थे, इसलिये भी। मैं चौंका, वह यहाँ इतनी रात को क्या कर रहे हैं। चौंका-चौंकी के साथ मुझे शराब की बू मालूम दी। पर मैं चुपचाप चला गया।

दूसरे दिन कथा-प्रसंग पर मैंने राजा साहब से कह दिया, पर शिकायत के तौर पर नहीं, मजाक के तौर पर। सुपरिंटेंडेंट साहब पीते हैं,

यह सब लोग जानते थे, राजा साहब और बहुत जानते थे। हँसने लगे।

पर बड़े आदमी कहलानेवाले लोग अपने मातहत रहनेवालों या नौकरों से तरह-तरह से पेश आते हैं। एक दिन एकाएक मुझे हुक्म हुआ—"गोपालजी के मंदिर में जाकर कसम खाकर कहो, तुमने सुपरिंटेंडेंट साहब को शराब की हालत मे देखा है।"

सुपरिंटेंडेंट साहब को हुक्म हुआ—"तुम कहो, मैंने नही पी।"

सुपरिंटेंडेंट साहब ससारी आदमी थे। एक गवाह ठीक कर लिया था—फीलवान, यह कहने के लिये कि सुपरिंटेंडेंट साहब के लड़के को भूत लगा था, वह फूँक डालने गया था। उसे हुक्म हुआ, वह क़ुरान लेकर कहे।

कसम के दिन फ़ीलवान नही गया। हम दोनों गए। मैंने जैसी सुगंध पाई थी, उसके लिये कसम खाई। सुपरिंटेंडेंट साहब बिलकुल डकार गए।

क़समी-क़समा हो जाने के बाद मैंने इस्तीफा दाखिल किया। राजा साहब को एक निजी पत्र लिखा—"मेरे धर्म-स्थल पर हस्त-क्षेप करने का आपको कोई अधिकार न था। फिर मैंने सुपरिंटेंडेंट साहब की नौकरी लेने के लिये नही कहा था।"

सुपरिंटेंडेंट साहब ने उन्हे यही समझाया था कि उस साधु के सबंध मे चूँकि उन्होंने सही-सही बातें कही है, इसलिये उनकी नौकरी लेने के अभिप्राय से मैने यह जाल रचा है। अब जब से हुज़ूर ने वह सब काम छोड दिया है, तब से हुज़ूर की बराबर अनुवर्तिता वह कर रहे हैं, इसीलिये हुज़ूर ने गुरुमन्त्र लेने की बात भी कही थी। गुरुमन्त्र का प्रभाव होता ही है।

मेरा इस्तीफ़ा मजूर न किया गया। राजा साहब की चिट्ठी आई—"यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणी निषेवते।"

मैंने कहा—' अध्रुव की ही सेवा सही, मेरी तनख्वाह दे दी जाय, मेरा काम समझ लिया जाय ।"

नौकरी छोड दी । कई लोग, यहाँ तक कि असिस्टेंट मैनेजर साहब, जिन पर रोज़ रिश्वत का इलज़ाम लगता था, मिलने पर कह गए—"यहाँ तुम्ही एक आदमी हो । बहुतों ने झुकी कमर सीधी कर-करके देखा ।" मैंने अपनी चीजें नीलाम करके, एक भतीजे को साथ लेकर गाँव का रास्ता लिया ।

गाँव पहुँचकर ससुराल गया । देश मे पहला असहयोग-आदोलन ज़ोरों पर था । खलिहानों में बैठे हुए किसान ज़मीदारो से बचने के लिये रह-रहकर 'महात्मा गाधीजी की जय' चिल्ला उठते थे । कुछ अति आधुनिक सरकारी नौकर, जमीदार और पुलिस के आदमी मज़ाक करते थे—तरह-तरह के अपशब्द । कुछ अकर्मण्य मालदार राजनीतिक विद्वान् अख़बारो का उलथा कर-कर टीका-टिप्पणी के साथ समाज मे चर्चा करते हुए पाचन-शक्ति बढ़ा रहे थे । ऐसे ही एक ने मुझसे कहा—"महात्माजी ने सिद्ध कर दिया है, चर्खा चलान से कम-से-कम रोटियाँ चल सकती है ।"

मैं बेकार था । 'सरस्वती' से कविता-लेख वापस आते थे । एक-आध चीज़ छपी थी । 'प्रभा' मे, मालूम हुआ, बड़े-बड़े आदमियो के लेख-कविताएँ छपती है । एक दफ़ा ऑफ़िस जाकर बातचीत की, उत्तर मिला, इसमे 'भारतीय आत्मा,' 'राष्ट्रीय पथिक' मैथिलीशरण गुप्त-जैसे कवियों की कविताएँ छपती है । ऐसे ही कुछ लेखकों के नाम सुने । मुँह लटकाकर लौट आया । जीविका का कोई उपाय न था । चार भतीजो की परवरिश सिर पर । जिन सज्जन ने चर्खे की उपयोगिता समझाई थी, उन्हें एक तकुआ खरीद लाने के लिये पैसे दिए थे, वह कानपुर गए थे । यहाँ मेरे गांव के पडोस मे कोरी

बुनाई का काम करते है, मैं सीखने के लिये रोज जाने लगा। कोरियों ने कहा—'तुम महाराज होकर क्या यह काम करोगे ? अरे, कहीं भागवत बाँचो ।"

वह सज्जन कानपुर से लौटे, बोले—"जल्दी में था, खरीदने की याद नही थी ।"

मन मे अत्यधिक उथल-पुथल थी। इसी समय कन्यादायग्रस्त भी आ-आकर घेरते थे। वर्णनो मे किसी की कन्या इदिरा से कम न थी। बड़ा गुस्सा आया। ससुराल चला गया। कन्यादायग्रस्तों की संख्या वहाँ और अधिक दिखी। एक दिन गगा के किनारे बैठा था। टहलते हुए कुल्ली आए। समय का प्रभाव कुल्ली पर बहुत पड़ा था। चेहरे से सभ्य राजनीतिक हो गए थे। मुझे देखकर उसी ढंग से नमस्कार किया। पहले की अदालतवाली सभ्यता अब राजनीतिक सभ्यता में बदली है, मैंने देखा। मैं बैठा था। कुल्ली ने सोचा, मैं कोई महान् राजनीतिक कर्मी हूँ। इधर कुल्ली अखबार पढ़ने लगे थे। त्याग भी किया था, अदालत के स्टांप बेचते थे, बेचना छोड़ दिया था। महात्माजी की बातें करने लगे। मैं सुनता रहा। जब कुछ पूछते थे, तब जितना जानता था, कहता था।

एकाएक भाव में उमड़कर कुल्ली ने कहा—"मुझे कुछ उपदेश दीजिए।"

मैं जला हुआ था ही। कहा—"गंगा मे डूब जाइए।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?" पूरे राजनीतिक आश्चर्य मे आकर पूछा।

"आप डूब सकते हैं या नहीं ?"

"डूब कैसे जाऊँ ? कोई मतलब की बात भी हो ?"

"मतलब की बात मुझे नहीं आती।"

"तो आप बे-मतलब यहाँ बैठे हुए हैं ?"

"हाँ, इतना ही मतलब था। आपसे मिलने के मतलब से तो नहीं आया था ?"

कुल्ली मेरी ओर देखते रहे। उन्हे नहीं मालूम था, इनके चारो ओर आग लगी है। चुपचाप उठकर चले गए।

☆

ग्या
र
ह

अनेक आवर्तन-निवर्तन के बाद मैं पूर्ण रूप से साहित्यिक हुआ : कुछ ही दिनो में कविता-क्षेत्र मे जैसे चूहे लग जायँ, इस तरह कवि-किसानों और जनता-ज़मीदारों मे मेरा नाम फैला। साल ही भर मे इलाहाबाद के श्रीहर्ष और कलकत्ते के कालिदास हिंदी के काव्य का उद्धार करने के लिये आ गए, एक ही समय मे। पुराने स्कूल-वालों ने अपनी मोर्चाबंदी की, और लड़ाई छेड़ दी। पर हार-पर-हार खाते गए; कारण, बुद्धि की बारूद नही थी। ध्यरमन की फुट्टफैर होकर रह गई। इस तरह अब तक अनेक लड़ाइयाँ हुई। पर नए लड़नेवालों से लड़ने पर पुराने बराबर हारे हैं।

अस्तु, हिंदी के काव्य-साहित्य का उद्धार और साहित्यिकों के आश्चर्य का पुरस्कार लेकर मैं गाँव आया। गाँव से ससुराल गया। कुल्ली मिले। अख़बार पढ़ते थे। अख़बारों में मेरा नाम, आलोचना

आदि मे पढ चुके थे, जाने पर बड़ी आव-भगत उन्होंने की। एकटक देखते रहे। अब उनका वह प्रियजन विकास पर है। इस बार अपने घर के जितने कवियों की चर्चा की, सबको उतारकर, क्योंकि अखबारों में उनकी वैसी आलोचना नही छपती थी, फिर वे राजा के आश्रित थे।

कुल्ली ने मुझे देखते हुए आवेग से पूछा—"आपने दूसरी शादी नही की ?"

मैंने कहा—"करने की आवश्यकता नही मालूम दी।"

पूछा—"रहते किस तरह है ?"

उत्तर दिया—"एक विधवा जिस तरह रहती है।"

कुल्ली—"विधवाएँ तो तरह-तरह के व्यभिचार करती हैं।"

मैं—"तो मैं भी करता हूँगा।"

कुल्ली बहुत खुश हुए। कहा—"लेकिन पाप होता है।"

मैं—"पुण्य के साथ-साथ पाप हो, तो डर नही। कहा है—एक अंगारा पहाड-भर भूसा जला सकता है।"

कुल्ली जमे। पूछा—"समाज के लिये आपके क्या विचार हैं ?"

"जो कुछ मैं कह गया, मैंने कहा—"इसी का नाम समाज है। जो कुछ बहता है, उसमे हमेशा एक-सा जलत्व नही रहता।"

"आप हिंदू-मुसलमान के सबध में क्या कहते हैं ?"

मैं—"हिंदू मुसलमान बन सकता है, मुसलमान हिंदू नही।"

कुल्ली बहुत खुश हुए। उनके दिल की बात थी। उनका इतिहास मुझे मालूम न था, लेकिन वह अपने जीवन के अनुभव और सत्य को मुझसे मिला रहे थे। पूरा उतरता देखकर कहा—"एक मुसलमानिन है। मैं उससे प्रेम करता हूँ। वह भी मेरे लिये जान देती है। ले चलने को कहती है, पर यहाँ के चमारों से डरता हूँ।"

मैंने कहा—"चमारों से सभी डरते हैं, लेकिन जूते गाँठने के लिये देते रहने पर दबे रहते हैं चमार।"

"तो आपकी राय है, ले आऊँ ?"

मैं कलकत्ते का हिंदू-मुस्लिम दंगा देख चुका था। उन दिनों अखबारो मे यही चर्चा थी। बाजे के प्रश्नोत्तर चल रहे थे। इसी पर मुंशी नवजादिकलाल साहब महादेव बाबू को चार महीने की सख़्त सज़ा दिला चुके थे। छटने पर मैं स्वागत करा चुका था। समय का रंग सब पर रहता है, लड़कपन हो, जवानी। मैंने पूरी उत्तेजना से कहा—"अवश्य ले आओ।"

कुल्ली मे जैसे स्वर्गीय स्पिरिट आ गई। उदात्त स्वर से बोले—"ये हिंदू नामर्द हो गए हैं। दूसरे को भी नामर्द करना चाहते है।"

"आप इनके सामने आदर्श रखिए।" मैंने कहा।

कुल्ली झटके से उठे, उसी वक्त आदर्श रखने के विचार से, और सीधे उसी प्रिया के घर गए, उसे ले आने के लिये।

बा
र
ह

इन दिनो मै लखनऊ रहने लगा था। सविनय-अवज्ञा-आंदोलन समाप्त हो चुका था। अछूतोद्धार की समस्या थी। इसी समय दलमऊ गया। कुल्ली की पूर्ण परिणति थी। राजनीति और सुधार दोनो के पूर्ण रूप थे। आंदोलन का केंद्र रायबरेली था, तब कुल्ली काफ़ी भाग ले चुके थे। पहले नमक-कानून दलमऊ मे तोडा जानेवाला था, तब कुल्ली ने ही ख़बर दी थी कि पुलिस गोली चलाने की तैयारी मे है। तब कार्यकर्ता दलमऊ से हटकर रायबरेली चले गए थे, ताकि पुलिस को तकलीफ़ न हो। अदालत जानेवाले वकीलों, पुलिस के नौकरों, सरकारी अफ़सरों, पडों, पुरोहितों, ज़मीदारों और ताल्लुक़ेदारों से घृणा करने लगे थे। प्रसंग-वश ब्राह्मणों से भी घृणा करने लगे थे।

कुल्ली एक अच्छे-खासे नेता की तरह मिले। मिलते ही पूछा—"आपके उधर कैसा कार्य है ?"

मैंने ताज्जुब से पूछा—"कौन-सा कार्य ?"

"यही, जो चल रहा है।" कुल्ली ने भी आश्चर्य से मुझे देखते हुए कहा।

"राजनीतिक ?" मैंने सीधे-सीधे पूछा।

"हाँ यही आदोलनवाला।" कुल्ली कुछ कटे हुए बोले।

"अब तो समाप्त है।"

"इससे कुछ होगा ?"

"किससे क्या होता है, क्या मिलता है, क्या जाता है, यह मैं नही जानता, इसलिये मानता भी नहीं; कुछ मेरी भी सुनी-सुनाई; पढी-पढाई बाते है, उन्ही मे कुछ नमक-मिर्च अपनी समझ से मिलाकर।"

कुल्ली खुश हो गए। एक भेड बनता है, तो दूसरा भेडिया बनने का हौसला दबा नही सकता। इसीलिये अब तक दीनता और दीन की ही संसार के लोगों ने ऊँचे स्वर से तारीफ़ की है। मैं साधारण आदमी हूँ, इसने कुल्ली को असाधारणता का बोध तत्काल करा दिया। मुझसे कहा—"मैं उसे ले आया।"

"किसे ?"

"उसी मुसलमानिन को।"

"तब तो मेरी पहली बात तुमने मान ली। मैंने कहा था, तुम गगा मे कूद पडो, तुम मुझे लाँग समेटे हुए ही उस वक्त देख पडे थे।"

कुल्ली ने आश्चर्य से कहा—"गंगा में कैसे कूदा ?"

"किताब में स्त्री को नदी कहा है। नदियों मे गंगा श्रेष्ठ है। तुम श्रेष्ठ स्त्री ले आए हो।"

कुल्ली प्रसन्न हो गए। बोले—"लेकिन एक बात है, यहाँवाले मानते नही।"

"जब जानेगे, तब मानेगे।" मैंने कुल्ली की छड़ी देखते हुए कहा—"किसी को यह संशय नही कि यह छड़ी नहीं।"

कुल्ली ने भी अपनी छडी देखी, और मुस्किराकर कहा—"लोग सताते है। पथवारी-देवी के दर्शनों के लिये भेजा था, लोगों ने मंदिर के दरवाज़े पर भी नही जाने दिया।"

"तुम्हे समझना था, देवीजी ने कृपा की. ज्ञान दिया, क्योंकि वह मंदिरवाली नही थी, पथवाली थी।"

"अच्छा!" कुल्ली बहुत ख़ुश हुए, कहा—"इसलिये पथवारी कहते है!" नम्र होकर बोले—"मेरा नाम भी पथवारीदीन है।"

"तब?" मैंने कहा—"और पथवारी देवी उसे क्या देती?"

"आप बहुत-बहुत बडे ज्ञानी है," कुल्ली ने हाथ जोडकर मुँह के सामने हाथी की सूँड उठाई। मैने मन मे कहा, देखो अब कौन ज्ञानी है।

"देखो कुल्ली" मैंने कहा—"गणेशजी जितने ज्ञानी हैं, मैंने सुना है, उतने ही मूर्ख हैं। बगाल मे हस्तिमूर्ख कहते हैं, यानी हाथी की तरह का मूर्ख, इससे बडा मूर्ख दूसरा नही। एक दफ़ा मेरे एक दोस्त जगल मे शिकार खेलने गए थे। एक शेर मारा। मारकर पत्तों से ढककर उसे नीचे डालकर फिर मचान पर जा बैठे कि एक-आध हिरन आ जाय, तो मारकर खाने का भी इतज़ाम कर लें। इत्तिफ़ाक़, आया हाथियों का झुड। जगली हाथी सबसे खतरनाक है। क्योकि वह हिलाकर पेड़ से भी आदमी को कैथे की तरह गिरा लेता है, या डाल तोड़कर नीचे लाता है। मेरे मित्र पक्के शिकारी थे। उन्हें यह सब मालूम था। मचान कुछ ऊँचा था। हाथियों के

नायक के सूँड़ बढ़ाते ही उन्होंने अपनी बंदूक़ नीचे डाल दी, ठीक उसी जगह, जहाँ शेर मारा ढका था। हाथी बंदूक लेकर तोड़ने लगा। तब तक मेरे मित्र और ऊँची डाल पर चले गए। बंदूक़ तोड़कर पत्तो से ढकी चीज़ का देखने की उत्सुकता से हाथी ने सूँड़ बढ़ाई। पत्ते खोलते ही शेर दिखा। हाथी बेतहाशा भागा, उसके साथी भी भगे। मित्र बच गए, यद्यपि यह एक संयोग की बात थी, पर इसमे शिक्षा की कमी नही। जहाँ हाथी सताते हों, वहाँ शेर की खाल काम देती है। बुद्धि इसीलिये सबसे ऊपर है।"

कुल्ली समझ गए कि कहनेवाला और जो कुछ हो, बेवक़ूफ़ नही, बोले—"अछूत-पाठशाला खोली है। तीस-चालीस लड़के आते हैं, धोबी, भंगी, चमार, डोम और पासियो के। पढ़ाता हूँ। लेकिन यहाँ के बड़े आदमी कहे जानेवाले लोग मदद नही करते। यहाँ के चेयरमैन साहब के पास गया, वह ज़बान से नही बोले, हालाँकि शहर के आदमी है। टाउन-एरिया मे सिर्फ़ कुछ घर हैं। बाकी गगापुत्रो की बस्ती है। ये लोग उदासीन है। कुछ सरकारी अफ़सर हैं, वे भड़काया करते है। कैसे काम चले? मदद कही से नही मिलती। जो काम करता था, आदोलन मे छोड़ दिया। अब देखता हूँ, उसी गधे पर फिर चढ़ना होगा।"

मैंने सोचा—"यह कार्य की बात है, रस को नही। जिन्हे कार्य करना है, वे अपना रास्ता खोज लेगे। ज़रा कुल्ली से एक चोट कसकर मज़ाक़ क्यो न किया जाय। जहाँ तक रस मिले, पान करना चाहिए, आर्यों की सतान हूँ, सोमरस के अभाव में ताड़ी का प्रयोग प्रशस्त है, काका कालेलकर साहब ने समझा दिया है। प्रकृति को पर्दे मे रखना दुनिया के आदमियों का काम है। जिन्हे कहीं खुला नज़र आएगा, आप रुकेगे।"

खुलकर पूरे एमोशन के साथ कहा—"महात्माजी को लिखिए।"

कुल्ली मे इतना उच्छ्वास आया, जैसे उनकी अर्जी मंजूर हो। पूछा—"महात्माजी का पता क्या है ?" मैने पता बतला दिया।

नोटबुक निकालकर कुल्ली नोट करते रहे। फिर सिर उठाकर मुझसे पूछा—"महात्माजी के अलावा और भी किसी को लिखना चाहिए ?"—जैसे न्योता भेज रहे हों।

"हाँ" मैने कहा—"प० जवाहरलाल नेहरू को।"

फिर सिर झुकाकर लिखते हुए पूछा—"आनंद-भवन, इलाहाबाद ?"

"या स्वराज्य-भवन, इलाहाबाद।" मैंने कहा।

कुल्ली ने लिख लिया। फिर निश्चित होकर मुझसे कहा—"एक रोज़ हमारे वहाँ चलिए आपको सब कुछ दिखाऊँ; अपनी भौजी को भी देखिए।"

"साँवली हैं—गोरी ?" मैंने जल्द उत्तर पाने की गरज़ से पूछा।

कुल्ली मुस्किराए। कहा—"अपनी आँखों देखिए।"

"कुछ योग्यता ?" मैने बिलकुल आधुनिक फ़ैशन के आदमी की तरह पूछा।

कुल्ली गभीर होकर बोले—"बहुत अच्छी रामायण पढ़ती हैं। अभी गई थी—" राजा साहब या रानी साहब, शिवगढ, या किसे, कहा, पढकर सुनाई; उन्हें बहुत ख़ुशी हुई।

पूछना चाहता था, सिर्फ़ ख़ुशी रही या बख़्शिश भी मिली; लेकिन स्त्री और सभ्यता का विचारकर रह गया।

कुल्ली ने पूछा—"तो पाठशाला देखने कब आइएगा ?"

अछूतों का मामला, यहाँ चालाकी नही चलेगी, सोचकर मैंने कहा—"जब आप कहें, आऊँ। मै समझता हूँ, परसों ठीक होगा,

क्योकि आप लडको को खबर भेज दे सकेंगे ; उस रोज अधिक-से-अधिक लडके हाज़िर हो सकेंगे।

नमस्कार कर कुल्ली बिदा हुए।

मैं श्रीमती मुखोपाध्याय के यहाँ गया। ये स्त्रियो की चिकित्सा, प्रसव आदि के लिये खास तौर से नियुक्त सरकारी डॉक्टर थी। इनके पति मुखोपाध्याय महाशय उस समय बगाल मे आकर वहीं रहते थे। श्रीमती मुखोपाध्याय उनकी दूसरी या तीसरी पत्नी थी। ईश्वर की कृपा से उनके एक पुत्र और सात-आठ कन्याएँ थी। जब कन्याओ को लेकर गगा नहाने जाती थी, तब देखनेवाले को 'ब्वायज टु लिलिपुट' याद आ जाता था। मुखोपाध्याय महाशय संदिग्ध-स्वभाव के आदमी थे। कोई भी सरकारी अफसर लेडी डॉक्टर से मिलने जाता था, तब वह सदेह करने लगते थे, पति-पत्नी मे अक्सर तकरार चलती थी, पर वृद्ध मुखोपाध्याय मुश्किल से एक रात पूरी उतार सकते थे। मनचले आदमी समझ गए थे, इसलिये सवेरे ही कोई-न-कोई पहुँचते थे।

मेरी-उनकी इस तरह जान-पहचान हुई कि मेरे एक सम्मान्य मित्र के यहाँ वह जाया करते थे। मित्र कान्यकुब्ज है, साथ सुप्रसिद्ध। यह मुखोपाध्याय महाशय को उतना ही बडा मानते थे, जितना बडा कलकत्ता-बबईवाले हिंदोस्तानियों को मानते हैं। मुखोपाध्याय महाशय दुखी होते थे। एक दिन मैंने यह दृश्य देखा, तो आमन्त्रित करके इन्हे खिलाया। तब से इनके वहाँ कभी-कभी जाया करता था। मवेशी डॉक्टर भी बगाली थे। वहाँ प्रायः रोज़ जाते थे। मुसलमान सब-तहसीलदार साहब भी जाते थे। मैंने कुल्ली के संबंध में पूछा, तो सबको नाखुश पाया। कहा—'यह इतना अच्छा काम कर रहे हैं, आप इनसे सहानुभूति क्यों नही रखते ?"

लोगो ने कहा—"अछूत-लड़को को पढ़ाता है, इसलिये कि उसका एक दल हो ; लोगों से सहानुभूति इसलिये नही पाता ; हेकड़ी है ; फिर मूर्ख है, वह क्या पढाएगा ?—तीन किताब भले पढ़ा दे। ये जितने काग्रेसवाले है ; अधिकाश मे मूर्ख और गँवार। फिर कुल्ली सबसे आगे है। खुल्लमखुल्ला मुसलमानिन बैठाए है। उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले जाकर गुरु-मत्र भी दिला आया है। पर आदमी आदमी हैं, जनाब, जानवर थोड़े ही है ? कान फुँकाने से विद्वान्, शिक्षक और सुधारक होता है ? देखो तो, बीवी तुलसी की माला डाले है। दुनिया का ढोग।"

तीसरे दिन कुल्ली आए। बड़े आदर से ले गए। देखो, गड़हे के किनारे, ऊँची जगह पर, मकान के सामने एक चौकोर जगह है। कुछ पेड़ है। गड़हे के चारो ओर के पेड़ लहरा रहे है। कुल्ली के कुटी-नुमा बँगले के सामने टाट बिछा है। उस पर अछूत-लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे है। आँखो से निर्मल रश्मि निकल रही है। कुल्ली आनद की मूर्ति, साक्षात् आचार्य। काफ़ी लड़के। मुझे देखकर सम्मान-प्रदर्शन करते हुए नतशिर अपने-अपने पाठ मे रत हैं। बिलकुल प्राचीन तपोवन का दृश्य। इनके कुछ अभिभावक भी आए है। दोनों मे फूल लिए हुए, मुझे भेट करने के लिये। इनकी ओर कभी किसी ने नही देखा। ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत-मस्तक ही ससार से चले गए है। संसार की सभ्यता के इतिहास मे इनका स्थान नही। ये नही कह सकते ; हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद थे; रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ है; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे है; अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वश के हैं। फिर भी ये थे, और है।

अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नही;

जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने जम्बुको मे वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा-लिखा नही; लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे बड़ा नही। उसने जो कुछ किया है, सत्य समझकर। मुख-मुख पर इसकी छाप लगी हुई है। ये इतने दीन दूसरे के द्वार पर क्यों नही देख पडते? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था।

इसी समय विना स्तव के, विना मत्र के, विना वाद्य, विना गीत के, विना बनाव, विना सिंगारवाले वे चमार, पासी, धोबी और कोरी दोने में फूल लिए हुए मेरे सामने आ आकर रखने लगे। मारे डर के हाथ पर नही दे रहे थे कि कही छू जाने पर मुझे नहाना होगा। इतने नत। इतना अधम बनाया है मेरे समाज ने उन्हे।

कुल्ली ने उन्हें समझाया है, मैं उनका आदमी हूँ, उनकी भलाई चाहता हूँ, उन्हे उसी निगाह से देखता हूँ, जिससे दूसरे को। उन्हे इतना ही आनद विह्वल किए हुए है। विना वाणो को वह वाणी, विना शिक्षा को वह संस्कृति. प्राण का पर्दा-पर्दा पार कर गई। लज्जा से मैं वहीं गड़ गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती-समझती है। वहाँ चालाकी नही चलती। ओफ्! कितना मोह है! मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ!—फिर क्रातिकारी!!

संयत होकर मैंने कहा—"आप लोग अपना-अपना दोना मेरे हाथ मे दीजिए, और मुझे उसी तरह भेटिए, जैसे मेरे भाई भेटते हैं। बुलाने के साथ मुस्किराकर वे बढ़े। वे हर बात मे मेरे समकक्ष हैं, जानते हैं। घृणा से दूर है। वह भेद मिटते ही आदमी-आदमी मन और आत्मा से मिले, शरीर की बाधा न रही।

इस रोज मैं और कुछ नही कर सका, देखकर चला आया, कुछ लड़कों से कुछ पूछकर।

★

ते
र
ह

दूसरे रोज कुल्ली आए। नमस्कार-प्रणाम आदि के बाद बैठे। कहने लगे—"अछूत-पाठशाला खोलने के बाद से लोगो की रही सहानुभूति भी जाती रही। क्या कहूँ, आदमी-आदमी के लिये जरा भी सहनशील नही। वह अपने लिये सब कुछ चाहता है, पर दूसरे को जरा भी स्वतत्रता नही देना चाहता। इसीलिये हिंदोस्तान की यह दशा है, मैं समझ गया हूँ।"

मैंने कहा—"कुछ सरकारी अफसरों से मेरी मुलाक़ात हुई थी। वे आपसे नाराज हैं, इसलिये कि आप यह सब करते हैं। शायद आपसे उन्हें इज्जत नहीं मिलती। वे नौकर होकर सरकार हैं, यह सोचते हैं; आप उन्हें याद दिला देते हैं, वे नौकर है; उन्हें रोटियाँ आपसे मिलती हैं।"

कुल्ली हँसे। कहा—"और भी बातें है। भीतरी रहस्य का मैं जानकार हूँ, क्योंकि यही का रहनेवाला हूँ। भडा फोड़ देता हूँ। इसलिये सब चौके रहते है। वह मेम है, सरकार की तरफ से नौकर है, लेकिन बच्चा होआने जाती है, तो रुपया लेती है, और एक की जगह दस-दस ; मैंने एक धोबिन को कहा, बुलाए और रुपया न दे, ज़्यादा बातचीत करे, तो देखा जायगा। धोबिन ने ऐसा ही किया। मेम साहब नाराज हो गई। यही हाल मवेशी-डॉक्टर का है। मुसलमान इसलिये नाराज़ है कि मुसलमानिन ले आया हूँ। अरे भई, तुम्ही गाते हो—दिल ही तो है न, संगोख़िश्त दर्द से भर न आए क्यो ? फिर नाराज क्यों होते हो ? क्या यह भी कही लिखा है कि दिल सिर्फ मुसलमान के होता है ? और हिंदू, हिंदू है बुजदिल, खास तौर से ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया बेचारा क्या करे—इस कोठे का धान उस कोठे करे, उसे फुर्सत नही, उसके लिये ये सब समझ से बाहर की बाते है, क्योंकि रुपए-पैसे की नही। आख़िर क्या करूँ ? आदमी हूँ, आदमियो मे ही रहना चाहता हूँ।"

मैंने कहा—"आपकी गगा जिस तरह पवित्र करती हुई बह रही हैं, लोगों की समझ मे वह तरह नही आती, इसलिये कि वे जड़-वादी है। वे जड़ गंगा का महत्त्व मानते हैं। अछूत ही इसमे ठीक-ठीक पवित्र होगे। पर कुछ दान लिया कीजिए। नही तो गुज़र कैसे होगी ?"

कुल्ली हँसे। बाले—"बहुत गरीब है ; फिर मैं पहले ज़मींदार था, लोग अब भी नंबरदार कहकर पुकारते है ; आप जानते ही हैं, उनसे कुछ ले नही सकता। सिर्फ़ बत्ती का तेल लेता हूँ। रात को ही लड़कों की पढ़ाई अच्छी होती है, क्योंकि बड़े लड़के रात को ही अपने काम-काज से फ़ुर्सत पाकर आते हैं।"

मैंने कहा—'भाभी साहबा को सुना, आपने पूर्ण रूप से शुद्ध किया है।"

"हाँ," कुल्ली ने मुस्किराकर कहा—"अयोध्याजी ले गया था। वहाँ गुरुमंत्र दिलाया। लेकिन हिंदू बड़े नालायक़ हैं। इस हद तक मुझे उम्मीद न थी। कहते हैं, बिल्ली को तुलसी की माला पहनाकर लाया है।" कहकर कुल्ली खुद हँसे।

फिर कहा—"यहाँ महेश-गिरि के मठ से कुछ रुपए माहवार मिलने की उम्मीद है। कुँवर साहब, सेमरी, चेयरमैन हैं यहाँ के ट्रस्ट के; मैंने उनसे निवेदन किया था, उन्होंने देने का वचन दिया है। लेकिन यहाँ के जो लोग है, वे विरोधी है।"

मैंने कहा—"यहाँ कौन-कौन है, आप कहिए, मैं मिलकर उनसे कहूँ।"

उदास होकर कुल्ली ने कहा—"वे लोग न करेंगे।"

मैंने नाम पूछा। कुल्ली ने नाम बतलाए।

मैंने कहा—"अच्छा, नंबरदार, ये लोग आपसे नाराज़ क्यों हैं?"

कुल्ली ने कहा—"सच बात कह दूँ; जब मैं मंत्र लेवाकर आया, तब एक ने बड़े भले आदमी की तरह मुझसे आकर पूछा—"कहो, नंबरदार, कहाँ से मंत्र लिवाया? मैंने बतलाया। यहाँ से एक आदमी अयोध्याजी गया, और वहाँ जाकर पूछा कि राय पथवारीदीन की स्त्री को मंत्र दिया गया है, तो क्या यह मालूम कर लिया गया है कि वह किस जाति की है? गुरुजी के चेले ने पूछकर कहा कि राय पथवारीदीन की स्त्री है, बस। उस आदमी ने कहा, आपको धोखा दिया गया है, वह मुसलमानिन है। गुरुजी के मठ में खलबली मच गई। उनके चेले बिगड़ जायँगे, तो आमदनी का क्या नतीजा होगा, और फिर अयोध्याजी है, जहाँ रामजी की जन्मभूमि

पर बाबर की बनाई मसजिद है,—हिंदू-मुसलमानवाला भाव सदा जाग्रत् रहता है, सोचकर, समझकर चेले ने कहा—आप जाइए, हम इस छल करने को शिक्षा देंगे। वह आदमी चला आया। मेरे पास चिट्ठी आई, तुमने हमसे छल किया, इसलिये कंठी-माला-मंत्र वापस कर दो ; नहीं तो हम उलटी कंठी बाँधकर, उलटे मंत्र से उलटी माला जपकर अपना दिया मंत्र वापस ले लेंगे।"

कौतूहल-वर्धक बात थी। मैंने पूछा—"तब तो तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

कुल्ली बोले—"जब तक दम नहीं निकलता। जब तक है, तब तक सबके जो अधिकार हैं, मुझे भी हैं; हालाँकि यंत्र मत्र पर मुझे यों भी विश्वास नहीं। लेकिन जिन्हे है, उन पर है। लिहाज़ा यह सब करना पड़ा।"

"फिर तुमने भी कोई जवाब दिया ?" मैंने पूछा।

"हाँ; कसकर। गुरुजी की बोलती बंद हो गई। मैंने लिखा, जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नहीं ग्रहण कर सकते, तब आप गुरु नहीं, ढोंगी हैं, आपने व्यापार खोल रक्खा है, आपमे हृदय का बल नहीं, आप एक नहीं, सौ उलटी माला जपिए। हिंदुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है। लेकिन यह कबीर की बहन है। इसे कोई धोखा नहीं दे सकता। इसमें श्रद्धा है। श्रद्धा न होती, तो मेरे पास न आती। कबीर को भी रामानंद ने ऐसी ही बात कही थी। लेकिन कबीर समझदार था। इसीलिये आप-जैसे सैकड़ों गुरु उनके चेले हुए। हिंदुओं को चराया, मुसलमानों को भी, और था महामूर्ख।" कुल्ली ओज में आ गए थे। कहकर हाँफने लगे।

मैंने सोचा, कुछ सुस्ता लें। कुछ देर बाद मैंने पूछा—"आपने महात्माजी को लिखा ?"

कुल्ली ने कहा—"जान पड़ता है, वह भी ऐसे ही होंगे।"

मैंने कहा—' नहीं, साल-भर अछूतोद्धार करने का उन्होंनेकार्य ग्रहण किया है। देश के इस कोने से उस कोने तक दौरा करेंगे।"

कुल्ली ने कहा—"बस, दौरा-ही-दौरा है। काम क्या होता है? पहले अछूतों की बात नही सोची? जब सरकार ने पेच लगाया, तब खोलने के लिये दौडे-दौड़े फिर रहे हैं।"

मैने कहा—"अच्छा, यह बताओ दोस्त, तुमने भी पेंच मे पड़-कर अछूतोद्धार सोचा है या नही?"

कुल्ली नाराज़ हो गए। कहा—"मेरे साथ भी कोई जमात है? और अगर यही है, तो बैठा लें महात्माजी मुसलमानिन।"

"तुम कैसे हो?" मैंने डाँटा, "वह बुड्ढे हो गए हैं, अब मुसल-मानिन बैठाएँगे।"

कुल्ली शांत हो गए, कहा—"एक बात कही।" फिर शायद खत लिखने की सोचने लगे। सोचकर कहा—"कोई चारा नहीं देख पडता। हाथ भी बँधे हैं। लेकिन काम करना ही है। क्या किया जाय?"

मैंने कहा—"नंबरदार, 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इसीलिये कहा है। जिधर चलना चाहते हों आप, उधर चले हुए बहुत आदमी नज़र आएँगे आपको —"आपसे बड़े बड़े, उसी तरफ चले जाइए। आज तक ऐसा ही हुआ है। कोई कुछ काम करता है, तो दुनिया से ही वस्तु-विषय ग्रहण करता है, और उस विषय के काम करने-वालो को देखता है, पढ़ता है, सीखता है समझता है, तब अपनी तरह से एक चीज़ देता है। आप अछूतोद्धार कर रहे हैं, कीजिए, करनेवालो से मिलिए, उनकी आज्ञा लीजिए; जिन्हें अधिकांश जन मानते हैं, मेरे-आपके न मानने से उनकी मान-हानि नही होती,

यहाँ समझिए, मैं-आप उनके मुकाबले कितने क्षुद्र हैं। अगर यह धोखा है, तो इस धोखे को आप तो नही मिटा सकते ? आप अपना रास्ता भी नही निकाल सकते, क्योंकि अभी आपने ही कहा—चारा नही, हाथ भी बँधे हैं। महात्माजी को ससार की बडी-बडी विभूतियाँ मानती हैं। वह मामूली आदमी नही।"

कुल्ली कुछ देर स्तब्ध रहे। फिर साँस भरकर बोले—"यहाँ काग्रेस भी नही है। इतनी बडी बस्ती, देश के नाम से हुँगती है, यहाँ काग्रेस का भी काम होना चाहिए।"

कुल्ली की आग जल उठी। सच्चा मनुष्य निकल आया, जिससे बड़ा मनुष्य नही होता। प्रसिद्धि मनुष्य नही। यही मनुष्य बड़े-बड़े प्रसिद्ध मनुष्य को भी नही मानता, सर्वशक्तिमान् ईश्वर की भी मुखालिफत के लिये सिर उठाता है, उठाया है। इसी ने अपने हिसाब से सबकी अच्छाई और बुराई को तोला है, और ससार मे उसका प्रचार किया है। ससार में कब उतरा ?

मैं कुल्ली को देख रहा था; एक साँस छोडकर कुल्ली ने कहा—"मधुआ चमार की औरत को कल तेज़ बुख़ार था, देखने जाना है, अस्पताल अगर न ले आ सका, तो डॉक्टर साहब के पैरों पड़ूँगा—देख लें, फ़ीस के रुपए उसके पास कहाँ, मधुआ काम पर गया होगा, उसका लड़का ढोर चराने।" कहकर, नमस्कार कर कुल्ली उठे। मैं देखता रहा, तेज़-क़दम वह चले गए।

मै उठकर महेश-गिरि मठ के मेंबरो से मिलने गया। मेंबर वे ही होते हैं, जो प्रतिष्ठित हैं; जो प्रतिष्ठित हैं, उन्हें अप्रतिष्ठा की बातें सब समय घेरे रहती हैं। पहले लालाजी मिले। बड़े सज्जन हैं। दर्ज़ी की दूकान पर खड़े थे। कोई कोट सिलने को दिया था। कपडे के शौक़ीन हैं। घर के साधारण जमीदार। मेरे घनिष्ठ

मित्र। दर्जी कई बार उनके मुँह पर कह चुका है कि रायबरेली छोड़कर दलमऊ मे वह इसलिये है कि लाला साहब ने उसे पहचाना है, और उसने लाला साहब को; अगर मन का काम न मिला, तो कारीगर का जी नही भरता; लाला साहब एक-एक अग नपाते हैं, और देखते है, ठीक बैठा या नही।

मुझे देखकर प्राचीन पद्धति के अनुसार लाला साहब ने प्रणाम किया, दर्जी ने भी हाथ जोड़े। आशीर्वाद मैं देता नही, नमस्कार करता हूँ या खीस निपोरता हूँ। एक दिन मेरे पुत्र ने लडकपन में पूछा था—"बप्पा, कोई पैर लगता है, तो आप आसीस क्यों नही देते ?" मैंने कहा—"मामा के यहाँ रहते-रहते तुम्हारी जैसी आदत हो गई, मेरी वैसी नही हो पाई।"

मित्र ने डाँट के साथ पूछा—"क्या है ?"

मैंने कहा—"सुना, तुम महेश-गिरि-मठ के मेंबर हो। तुम्हें लोग मानते भी बहुत हैं। मेरे मित्र हो, इसलिये समझदार हो, मैं भी मानता हूँ। एकात की एक बात है।"

मित्र गर्दन बढाकर एकात की ओर चले। दर्जी समालोचक की दृष्टि से देखने लगा।

एकात मे मैंने पूरे कविकठ से गद्य मे कहा—"यार, कुछ अछूतों के लिये भी करो।"

"अहद"—मित्र ने ध्वनि की, "मैं समझ गया, कुल्ली ने पकड़ा होगा आपको। अरे, आप भले आदमी, इन बातो मे न पड़िए। आपने तो जैसा सुना, वैसा ही समझा।"

"नही," मैंने कहा—"मैं व्यग्य बहुत लिख चुका हूँ; जैसे का वैसा ही नही समझता।"

"व्यग्य क्या ?" मित्र ने पूछा।

मैंने कहा –"जैसे तुम्हारा सर है सर होकर न हो, या इस पर चार सींगे हों।"

"यानी ?" मित्र कुछ बिगडे।

"अब यानी और क्या ?" मैने सीधे देखते हुए कहा।

"आप सही-सही बात कहिए।" मित्र कुछ दो रुखे होकर बोले।

"अब आए" सोचकर व्यंग्य मे मैने कहा—"रास्ते पर, कल आठ-दस आदमी तुम्हारा नाम लेकर कह रहे थे, लाला की एक टाँग तोड़ दी जाय ; जब देखो, दर्जी की दूकान पर खडे रहते हैं।"

"ऐ !" लाला घबराए। पूछा—"कोई वजह भी मालूम हुई ?"

"कुछ नही," मैने कहा –"काले-काले आदमी थे। यही पासी-चमार होगे।"

लाला सोचकर निश्चय पर पहुँचने लगे। कहा—"हाँ, मैं समझ गया।"

"कुल्ली मिले थे ?" लाला ने पूछा।"

"वह तो बहुत दिन से नही मिले। वे लोग क्यो बिगडे है, मुझे अंदाज़ लडाना पड़ी।"

सोचते हुए लाला दर्जी की ओर बढे। मै पडितजी की ओर चला। दिन के ग्यारह का समय होगा। पडितजी के यहाँ पहुँचा, तो देखा, पडितजी कनकैया उड़ा रहे है, मझा लखनऊ से मँगवाया है, इसलिये कि उनको कनकैया कोई काट न पाए।

मैंने कहा—"एक जरूरी काम से आया था।"

बोले—"देख ही रहे है, अभी फ़ुर्सत नहीं है।"

मै समझ गया, यह और कडा मुक़ाम है। कहा—"रायबरेली से डिप्टी साहब आए हैं। गगा नहाने आए थे। मैं यहाँ हूँ, जानते थे। क्योंकि उनसे मिलकर आया था, और उन्हें बुला भी आया।"

पंडितजी को जैसे जूड़ी आ गई। पूछा—"कहाँ है?"

मैंने कहा—"मेरे वहाँ ही हैं; आपको बुलाया है। साथ ही आते थे। मैंने कहा—"नहा चुके हो, गरमा जाओगे, फिर पैदल चलना है, और चढ़ाई भी है, मैं जाता हूँ, वह भी मेरे मित्र हैं, बुला लाता हूँ।"

पंडितजी ने नौकर को बुलाकर कहा—"अरे डोर लपेट। हमें डिप्टी साहब ने बुलाया है।"

नौकर ने पतंग ले ली। आप तुर्त-फुर्त नीचे उतरे, कपड़े पहनने लगे। तैयार होकर छड़ी लेकर चले। बड़ी जल्दी पैर उठ रहे थे। मैं उनकी चाल देखता, साथ चलता जा रहा था। आधे रास्ते पर आकर पूछा—"अपने हल्के के महादेवप्रसादजी है?"

मैंने कहा—"हाँ।"

न-जाने क्या सोचते रहे। घर आकर मैंने बैठका खोला। बैठका खोलते ही उन्होंने पूछा—"डिप्टी साहब?"

मैंने कहा—"अपनी ऐसी की तैसी में चले गए।"

"आपने मुझे धोखा दिया।" पंडितजी ने कहा।

"आपने मुझे कौन ज्ञान दिया था?" मैंने कहा।

"बस, अब क्या कहूँ आपको।" पंडितजी गरमाए हुए लौटे।

मैं तभी समझ गया था, इस मूर्ख की बुद्धि का कोठा बिलकुल खाली है। कहा—'जैसा मेरा आना-जाना व्यर्थ रहा, वैसा ही आपका; दुःख न कीजिएगा। जाइए, कनकैया उड़ाइए।"

★

चौदह

मैं लखनऊ आकर कुछ दिनो बाद लौटा। कुल्ली ने अपने काम के संबंध मे क्या किया, क्या कर रहे हैं, जानने की इच्छा थी, आग्रह था। जाने पर ससुराल में ही कुल्ली की तारीफ सुनी। श्रीमतीजी की जगह सलहज साहब थी; अब तक दो-तीन बच्चे की मा हो चुकी थी, इसलिये इच्छा होने पर बात-चीत छेड देता था, घूंघट के भीतर से शृगार-साहित्य के उत्तर बडे भले मालूम पड़ते थे।

एक दिन कहा भी कि महात्माजी पर्दे के खिलाफ़ प्रचार कर रहे हैं, तुम उनकी भक्ता भी हो, फिर मेरे सामने क्यों घूंघट काढती हो? उन्होने कहा, यों मेरी इच्छा नही, लेकिन यहाँ के आदमी ऐसे हैं कि कुछ-का-कुछ सोच लेते हैं। मैंने कहा, तो अपनी आँखें ढँककर दूसरों की आँखों पर पर्दा डालना चाहती हो!—

रहस्यवाद अच्छा है। ऐसी मेरी छोटी सलहज साहबा और सासुजी मेरे जाते ही उच्छ्वसित होकर भिन्न-भिन्न वाक्यों से एक ही बात कर गईं—"कुल्ली बड़ा अच्छा आदमी है, खूब काम कर रहा है; यहाँ एक दूसरे को देखकर जलते थे, अब सब एक दूसरे की भलाई की ओर बढ़ने लगे हैं; कितने स्वयंसेवक इस बस्ती में हो गए हैं। कांग्रेस क़ायम हो गई है। सब अकेले कुल्ली का किया हुआ है।

सासुजी के सुपुत्र ने गले में और ज़ोर देकर कहा,—"अम्मा, कुल्ली अठारह घंटा काम करते हैं। छ-छ कोस पैदल जाते हैं कांग्रेस के मेंबर बनाने के लिये। बस्ती मे और बाहर सब जगह इतनी इज्जत है कि लोग देखकर खड़े हो जाते हैं।"

सासुजी ने कहा—"भैया, आदमी नहीं, देवता है कुल्ली!"

सलहज साहबा ने कहा—"मैं तो उन्हे अवतार मानती हूँ। बिंदा खटिक की दुलहिन मर रही थी; गाँव में इतने आदमी थे, कोई नही खड़ा हुआ, नबरदार ने अपने हाथो उसकी सेवा की।"

मैंने कहा—"ज़रा उनसे मिलना था।" मन मे ऊधम मचा हुआ था कि महात्माजी को कुल्ली ने लिखा होगा, देखूँ, क्या जवाब आया।

साले साहब ने कहा—"मैं चला जाऊँगा।" कहकर बडी तेज़ी से अपना डंडा उठाकर, एक दफा अपनी बीबी को, फिर मुझे, फिर विश्वास की दृष्टि से अपनी अम्मा देखकर चले।

मैंने बाहर के बैठके का रास्ता लिया। इस समय कुछ प्रसिद्ध हो जाने के कारण, बस्ती के स्कूल कॉलेज के पढनेवाले लडके भी आते थे, उन्हें भी समय देना पड़ता था। प्राय: सबका पहला प्रश्न "छायावाद क्या है" रहा। मैं उत्तर देता-देता अभ्यस्त हो गया था। समझने में देर न होती थी, यद्यपि लड़कों की समझ में कुछ न आता था। बाद को आश्वासन देता था कि बाद को समझिएगा।

इन्ही दिनो श्रीमान् बाबू इक़बाल वर्मा साहब 'सेहर' से वहाँ मुलाक़ात हुई। अपनी सज्जनता और शुद्ध साहित्यिकता के कारण वह स्वय पहले मुझसे मिलने आए थे—यह मालूम कर कि मैं वहाँ हूँ। मुझे यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि 'सेहर' साहब की और मेरी एक ही बस्ती में ससुराल है। उनके साथ गोस्वामी तुलसीदासजी के सुप्रसिद्ध समालोचक-विद्वान् बाबू राजबहादुर लमगोड़ा एम्० ए०, एल०-एल्० बी० साहब के भाई साहब भी थे। लमगोड़ा साहब से मिलने की मेरी बहुत दिनो की इच्छा थी। क्योंकि उनकी आलोचना मुझे बहुत पसद आई थी, पर दुर्भाग्य-वश मिल नही सका था, उनके भाई साहब से मैंने ज़िक्र किया, उन्हीं के मकान मे; उन्होने मुझे फ़तेहपुर बुलाया ; फिर 'सेहर' साहब ने कविता सुनाने की आज्ञा की; मैंने सुनाई। ऐसी अनेक घटनाएँ हुई; पर अप्रसिद्ध जनों की होने के कारण रहने दी गईं। सब जगह एक बात मैंने देखी, मेरी कविता पढ़कर लोग नही समझे, सुनकर समझे, और इतना समझे कि मुझे 'श्रुति' पर ही कविता को छोडना पडा।

बैठके में बैठा नए भाव रूपमयी की तलाश मे था कि साले साहब आए, और बडी इज्ज़त से कुल्ली को दिखाकर—वह हैं—भीतर चले गए। उठकर मैने कुल्ली का स्वागत किया। वह बैठे। देखा, चेहरा एक दिव्य आभा से पूर्ण है, लेकिन देह पहले से दुबली, जैसे कुल्ली समझ गए है, जीवन की सध्या हो गई है, अब घर लौटना है। कवित्व का दिव्य रूप और भाव सामने जड़ शरीर में देखकर पुलकित हो उठा।

कुल्ली स्थिर भाव से बैठे रहे। इतनी शांति कुल्ली में मैंने नहीं देखी थी, जैसे ससार को संसार का रास्ता बताकर अपने रास्ते की अड़चनें दूर कर रहे हों। मैं कुछ देर और चुपचाप बैठा रहा।

कुल्ली ने एक साँस छोडी, जैसे कह रहे हों—"ससार में साँस लेने का भी सुबीता नही, यहाँ बडी निष्ठुरता है; यहाँ निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते हैं; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जन-सेवा हो, चाहे देश-सेवा; इस सेवा से लोग अपनी सेवा करना चाहते हैं; किसान इसलिये काग्रेस मे आते है कि ज़मीदार की मारो से, सरकार के अन्याय से बचे, और ज़मीन उनको हो जाय, गरीब इसलिये तारीफ़ करते हैं कि उन्हे कुछ मिलता है। पर इतना ही क्या सब कुछ है ? क्या इससे जीवन को शाति मिलती है ? शायद साँस के रहते नही।"

इतना स्तब्ध भाव था कि बात करने की हिम्मत नही होती थी। इसी समय साले साहब भीतर से जल-पान ले आए, और कुल्ली के सामने आदर-पूर्वक रखते हुए बोले—"रात-भर दुखिया चमार की सेवा करते है, उसकी स्त्री का देहात हो गया है, दुखिया बीमार है। आज लालगज जायँगे, वहाँ काग्रेस का काम है। कल दुपहर को जल-पान किया था, तब से ऐसे ही है।"

चुपचाप तश्तरी उठाकर कुल्ली नाश्ता करने लगे। चेहरा सुर्ख़। मनुष्यत्व रह-रहकर विकास पा रहा है। देखकर मैंने सिर झुका दिया।

कुल्ली नाश्ता करके हाथ-मुँह धोकर बैठे, पान खाया। एक तृप्ति की साँस ली। उन्हे कुछ देर तक एकटक देखकर मेरे साले साहब ने प्रस्थान किया।

बड़ी हिम्मत करके मैंने पूछा—नबरदार, फिर महात्माजी को लिखा था ?"

कुल्ली मुस्किराए। कहा—"अब क्या कहूँ ?"

मेरे लिये इतना बहुत था। एक दफ़ा बैठके के इस तरफ़ से उस तरफ़ तक टहल आया। नाटक के पार्ट काफ़ी कर चुका था। प्रभा-

वित होकर कहा—"बड़ा गुस्सा लगता है। कितना बडा नेता क्यों न हो, आदमी की पहचान नही कर पाता। करें भी कहाँ से ? दस-पाँच जगह कार्यकर्ताओ ने धोखा दिया कि समझ बैठे सब धोखेबाज़ हैं।" कहकर कुल्ली को देखा, प्रभाव पड रहा था। कहा—"मैं तो इसीलिये राजनीति मे भाग नही लेता। मैं जानता हूँ, मुझे प्राविंशल कांग्रेस-कमेटी का भी प्रेसीडेंट न बनाएँगे और कहने से भी बाज़ न आएँगे कि सिपाही का धर्म सरदार बनना नही है। लेकिन सरदार सरदार ही रहेंगे—सैकडो पेंच कसते हुए, ऊपर न चढ़ने देंगे।" कुल्ली जगे। ध्वनि मे प्रतिध्वनि होती ही है। कहकर मैं बैठ गया। पूछा—"क्या जवाब दिया महात्माजी ने ?"

"कुछ नही," कुल्ली ने शुरू किया—"मैने सत्रह चिट्ठियाँ (सत्रह या सत्ताईस कहा, याद नही) महात्माजी को लिखी, लेकिन उनका मौन भंग न हुआ। किसी एक चिट्ठी का जवाब महादेव देसाई ने दिया था। बस, एक सतर—इलाहाबाद मे प्रधान आफिस है, प्रांतीय, लिखिए।"

"आपने फटकारा नही ?" मैंने उग्र सहानुभूति से कहा।

कुल्ली खाँसकर बोले—"आप क्या समझते है ? मैंने लिखा, महात्माजी, आप मुझसे हज़ारगुना ज़्यादा पढ़े हो सकते हैं। तमाम दुनिया में आपका डका पिटता है, लेकिन हरएक की परिस्थिति को आप हरगिज़ नही समझ सकते। अगर समझते, तो मौन न रहते। जब मौन हैं, तब आप भगवान् हरगिज़ नही हो सकते। भगवान् अंतर्यामी होते हैं, आप अंतर्यामी नही हैं। यह मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया है। आपको बनियों ने भगवान् बनाया है, क्योंकि ब्राह्मणों और ठाकुरों में भगवान् हुए हैं, बनियों मे नही। जिस तरह बनियो ने आपको भगवान् बनाया है, उसी तरह आप बनिया-भगवान् हैं।"

मैंने कहा—' अरे, कुछ काम की बात भी लिखी ?"

"काम की बात तो सत्रह बार लिख चुका था।"

"तो यह अट्ठारहवाँ पत्र है, अट्ठाईसवाँ ?"

"यह मुझे याद नही। आप आइएगा, तो आपको नक़ल दिखाऊँगा।"

मैंने कहा—"बीच-बीच मे दोहा चौपाई-शेर भी लिखे थे ? इसमे प्रभाव पड़ता है।"

"उस वक्त कुछ याद ही नही आया। जो समझ मे आया, लिखा। यह तो जानता ही हूँ कि मूर्ख हूँ, बड़ी बड़ाई मूर्ख कह लेगे। लेकिन भगवान् तो मूर्ख और पडित नही मानते, उनकी दृष्टि मे सब बराबर हैं।"

"लेकिन गाधीजी ऐसे भगवान् नही। वह तो सबको भगवान् बनाना चाहते हैं, इसलिये लोग उन्हे अवतार कहते हैं।"

"झूठ है।" कुल्ली ने कहा।

मैंने पूछा—"अच्छा, फिर आपने क्या किया ?"

"फिर इलाहाबाद को लिखा (अछूतों के जिस ऑफिस का नाम कुल्ली ने लिया, वह मुझे याद नही), लेकिन पहले वहाँ से भी जवाब न आया, तब मैंने पं० जवाहरलालजी को लिखा।"

"कैसे लिखा" यह कहिए।

गभीर होकर कुल्ली बोले—"पहले तो सीधे-सीधे लिखा, जैसा सबको लिखा जाता है। बड़े आदमी हैं, इसलिये कुछ इज्ज़त के साथ लिखा, लेकिन उसका उत्तर जब न आया—तब डाँटकर लिखा। अरे, अपने राम को क्या, रानी रिसायँगी, अपना रनवास लेंगी।"

मैं ताड़ गया, राजा इस समय कुल्ली खुद हैं; इसलिये राजा नही कहना चाहते। कहा—' इस साल जवाहरलालजी राष्ट्रपति हैं, राजा कहना चाहिए था।"

"वह राजा-रानी एक हैं।" कुल्ली ने कहा—"दूसरे पत्र का जवाब तो उन्होने नही दिया, लेकिन पत्र को अछूतों के कार्यालय भिजवा दिया। वहाँ से जवाब आया कि मदद की जायगी। रायबरेली में जिलावाली ऑफ़िस से रुपए लीजिएगा, यहाँ से भेज दिए जायँगे।"

मैंने पूछा—"फिर आपको रुपए मिले ?"

"हाँ, एक बार, बस।" कहकर कुल्ली ने बाहर की तरफ देखा। कहा—"बड़ों की बात बड़े पहचानें। ज़्यादा कहना उचित नहीं। अपने सिर दोष लेना सीख रहा हूँ। इतना है कि तबियत नही भरी, जिस तरह चार पैसे के भोजन से सीधे व्यवहार से भरती है। मुझे लालगज जाना है। वहाँ से उधर देहात घूमूँगा। कांग्रेस के मेंबर बना रहा हूँ। फ़ुर्सत कम रहती है। पाठशाला आपकी भाभी चलाती हैं। एक दिन जाइएगा। मैं कई रोज़ के लिये जा रहा हूँ। बहुत दुर्बल भी हूँ। भगवान के भरोसे अब नाव छोड दी है। कोई खेनेवाला नही देख पडा। अच्छा, कुछ ख़याल न कीजिएगा। नमस्कार।"

कुल्ली चले गए। अब यह वह कुल्ली नही है। प्राय: पचपन-छप्पन की उम्र। लेकिन कितनी तेज़ी। कोई उपाय नही मिला, किसी ने हाथ नही पकडा, कुछ भी सहारा नही रहा, तब दूसरी दुनिया की तरफ़ मुँह फेरा है। कितना सुंदर है, इस समय सब कुछ कुल्ली का ! मैं देखता और सोचता रहा।

पंद्रह

दो-तीन दिन रहकर कुल्ली की पाठशाला और पत्नी को देखकर मैं लखनऊ चला आया। लेकिन जी नहीं लगा। कोई शक्ति मुझे लखनऊ की तरफ़ खींच रही थी, वहाँ की श्यामल-सजल प्रकृति, निर्मल गंगा, सुंदर घाट, दिगंत-विस्तार रह-रहकर याद आने लगा। सबसे अधिक आकर्षण कुल्ली का। एक जैसे पारलौकिक स्नेह मौन आमंत्रण दे रहा था—तुम आओ, तुम आओ। इसी समय याद आया, बहुत दिनों से दलमऊ की कतकी नहीं नहाई। इस बार चलकर नहाएँ।

इस तरह तीन-ही-चार महीने के अंदर फिर दलमऊ गया। गंगा-तट की शारद प्रकृति बड़ी सुहावनी मालूम दी। सघन वृक्षावली में एक पुरानी स्मृति जैसे लिपटी हो। प्रकृति जैसे वर्षा से नहाकर निखर गई है। चारों ओर उज्ज्वलता। कुल्ली के लिये

ऐसा ही उज्ज्वल समय आ गया है, सोचकर मन हर्ष से भर गया। मैं इक्के पर चला जा रहा था, पहले दिन की याद आई, जब कुल्ली मिले थे। वह अदालती फैशन का बिगड़ा कुल्ली आदर्श आदमी बन गया है।

इक्का ससुराल के सामने रास्ते पर रुका। आदमी आया। सामान उतार ले गया। सासुजी फाटक के सामने खड़ी हुई। इक्केवाले को पैसे दिला दिए। उतरकर मैंने उनके चरण छुए। भीतर गया। सलहज साहबा तिदरे के सामने आकर खड़ी हुईं। यह स्वागत था—कलश उनके प्राकृतिक थे, साक्षात् प्रकृति को मन मे नमस्कार किया। त्रुटियाँ बहुत होती हैं, लेकिन इनकी कृपा के विना पर्दा पार करना दुःसाध्य है, बहुत पहले से जानता था। भविष्य को भगवान् जाने। साले साहब भीतर थे। बाहर निकले! कहा—"जीजा, कुल्ली सख्त बीमार हैं, आप बड़े मौके से आए। मुलाकात हो जायगी। डॉक्टर साहब कहते थे, अब नहीं बचेंगे—कम-से कम हमारे मान को बात नहीं रही, क्योंकि यहाँ वैसे अस्त्र नही हैं, न वैसी दवा है; रायबरेली ले जायँ, वहाँ बचना हुआ, बच जायँगे। कल जाइए, देख आइए।"

मैंने पूछा - "हुआ क्या है?"

उन्होने मुंह बिगाडकर कहा—"गर्मी। पहले थी, इधर दौड़े बहुत, क्वार की धूप सिर से उतरी, फाके किए, बीमार हो गए। लेकिन जीजा, यहा कोई गाँव नही, जहाँ कुल्ली ने कांगरेस के नियम-बर (मेंबर) नही बनाए। नीचे का पेट तक सड़ गया है—सेरों पस निकलता है, इतनी बदबू आती है कि कोई छन-भर नहीं ठहर सकता। और ··"

मैंने कहा—"और क्या?"

साले साहब मुस्किराकर रह गए।

मैने कहा—"हँसने की कौन-सी बात है ?"

अपनी अम्मा और पत्नी की तरफ़ देखकर साले साहब ने मुझे एकात मे चलकर बुलाया, और मेरे जाने पर कान के पास मुँह ले जाकर कहा—"लिग लापता है।"

"लापता ?" मैने सदेह के प्रकाश्य स्वर से पूछा।

"हाँ।" उन्होने कहा, "लोग कहते हैं, अब नही रहा, कहते है—अब अगर कुल्ली जी भी गए, तो कुल्लियायन क्या करेगी ?" मै गंभीर होकर चारपाई पर आकर बैठा।

सलहज साहब गभीर होकर बोली—"हाँ, कुल्ली की बहुत खराब हालत है।"

सासुजी मेरे जल-पान की व्यवस्था के लिये भीतर चली गई थी। अपनी बहू की बात सुनकर उसे भीतर बुलाया। मै दम साधे बैठा रहा। जल-पान के बाद घर की और-और बाते होती रही।

दूसरे दिन सबेरे धूप निकलने पर मै कुल्ली के यहाँ गया। रास्ते मे कई स्वयसेवक उधर जाते हुए मिले, दरवाज़े पर कई अछूत लड़के, उनके तीन-चार अभिभावक। सबके चेहरे कह रहे थे, कुल्ली नही बचेगे। मै भीतर गया।

ठीक उसी जगह, जहाँ पहले दिन कुल्ली बैठे थे, आज पड़े दीखे। आज वे भाव यथास्थान अपनी कुरूपता को प्राप्त है, लेकिन मुख पर नही। मुख पर दिव्य काति क्रीड़ा कर रही है। प्रवेश करते ही ऐसी बदबू आई कि जान पड़ा, एक क्षण नही ठहर सकूंगा। हिम्मत करके खड़ा रहा। विद्या और अविद्या का आधा-आधा भाग कुल्ली के देह मे पूर्ण रूप से प्रकाशित था। कुल्ली कुछ ध्यान मे थे। आँखें खोलकर देखा—सामने देखकर, "आह ! आप हैं ? बडे सौभाग्य,

बड़े सौभाग्य, अब मैं कुछ नहीं चाहता ।" कहकर विह्वल हो गए । एक अछूत से सिरहाने की तरफ बिस्तरा बिछा देने के लिये कहा, मुझसे कहा—"यह हाल है । बड़ी बदबू मिलती होगी । लेकिन इधर न मिलेगी । दिल के ऊपर मैं नहीं चढने दे रहा । मुझे इसका रूप देख पड़ता है । हृदय से ऊपर मैं बहुत अच्छा हूँ । सिरहाने बैठकर बताइए, बदबू मिलती है ?"

बैठकर मैंने मालूम किया, वास्तव मे उधर बदबू नहीं थी । क्या कहूं, क्या करूँ, कुछ समझ मे नहीं आ रहा था । पाँच रुपए निकाले, और कुल्ली की स्त्री को देते हुए कहा—"आप दूध पीजिएगा ।"

कुल्ली कुछ न बोले । केवल ऊपर की तरफ़ देखा । कुछ देर फिर मौन रहा ।

मैंने पूछा—"डॉक्टर साहब क्या कहते हैं ?"

"डॉक्टर क्या कहेंगे ? अब कहने की बात नहीं रही । ईश्वर की इच्छा ।" कुल्ली ने आँखें मूंद ली ।

कुछ देर तक मैं बैठा रहा । फिर बाहर निकला । कुल्ली की स्त्री रोने लगी । कहा—"रायबरेली ले जाने के लिये कहते हैं । खर्चा यही पाँच रुपया है । डोली में आएँगे नहीं । लारी कोई आएगी, यहाँ खाली होगी, तो उसमें ले जाऊँगी, लेकिन फिर वहाँ क्या होगा ? वहाँ भी खर्चा है ।" कहकर रोने लगी ।

मैंने कहा—"आप इन्हें ले जाइए । मैं कुछ रुपए चंदा करके रायबरेली आता हूँ । आगे ईश्वर मालिक है ।"

आश्वस्त होकर कुल्ली की स्त्री देखती रही, मैं धीरे-धीरे बाहर चला ।

घर में दूसरे दिन मालूम किया, कुल्ली की स्त्री एक लारी पर कुल्ली को लेकर रायबरेली गई हैं । उत्तरदायित्व बढ़ गया । दल-

मऊ के स्वयंसेवकों को लेकर कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर गया। वहाँ प्रेसीडेंट साहब अपना पक्का मकान बनवा रहे थे। उन्ही के अधबने मकान के एक कमरे में कांग्रेस-कमेटी का दफ्तर है। स्वयसेवकों ने मेरा परिचय दिया। कुल्ली का काम वह देख चुके थे। रुपए की बात मैंने कही, तो बोले—"कांग्रेस का यह नियम नही, वह आपसे रुपए ले तो सकती है, पर दे नही सकती।"

"यह मैं जानता हूँ, पर जिसे योग्य समझती है, उसे इतना देती है कि दूसरों को पता नही चलता।"

बोले—"आपका मतलब ?"

मैंने कहा—"यह तो पहले अर्ज कर चुका।"

एक प्रेसीडेंट की हैसियत से बोले—"रुपए नही दिए जायंगे।"

मैंने कहा—"पहले मैं पाँच रुपए दे चुका हूँ, अब और दो रुपए दे रहा हूँ। रायबरेली का खर्च बरदाश्त करूंगा। इससे अधिक इस समय मेरी शक्ति नही। तीन रुपए और तीन सज्जन मित्रो से एक-एक रुपया चदा करके लिया है। कुछ आप दे दें, तो काम चल जायगा।"

उन्होने कहा—"सात रुपए विजयलक्ष्मी के स्वागत के खर्च से बचे है, आठ हो चुके हैं, हालाँकि वह आई नही, लेकिन वे रुपए जमा कर दिए गए हैं।"

मैंने कहा—"विजयलक्ष्मीजी के स्वागत से कुल्ली नंबरदार की जान ज्यादा कीमती है, यह तो आप मानते हैं ?"

उन्होने कहा—"मैं सब कुछ जानता हूँ। लेकिन यही शहरवाले जब घर बन गया, तब कहते हैं, दो हाथ म्युनिसिपैलिटी की जगह बढ़ा ली है।"

"इसीलिये आप विजयलक्ष्मीजी का ध्यान कर रहे हैं ?" मैंने मन में कहा। खुलकर कहा—"कोई विजयलक्ष्मीजी का स्वागत

करता है, तो पहले पता लगाती है—क्यों स्वागत किया गया। अगर कारण कोई उन्हे पाएदार मालूम हुआ, तो उसके पाए उखाड़कर तब दम लेती है। मै तो लखनऊ मे रहता हूँ, रोज़ देखता-सुनता हूँ। साक्षात् विजयलक्ष्मी है। हाथ जोडकर मैंने प्रणाम किया—"कभी किसी से नही मिलती, इसीलिये, देश में क्या, संसार मे उनकी जोड नही। लेकिन उन्हे मालूम हो जाय कि किसी ने कांग्रेस के किसी कार्यकर्ता के पीछे एक रकम फूंक दी है, तो फिर उनसे जो चाहे, करवा ले।"

लाला मुँह फैलाए सुनते रहे। पूछा—'आपसे मिलती है ?"

मैंने कहा—"नही, किसी से नही। लेकिन काम की बात होती है, तो इनकार भी नही करती।" मैंने फिर नमस्कार किया—"साक्षात् देवी ?"

लाला ने कहा—"तो वे सात रुपए है, ले जाइए।"

"हाँ," मैंने कहा—"दीजिए, बड़ी देर हो गई।"

लालाजी से रुपए लेकर मैंने रायबरेली जाने की तैयारी की। कुल्ली के एक मुसलमान मित्र भी स्टेशन पर मिले, वही जा रहे थे। रायबरेली पहुंचने पर सिविलसर्जन से मालूम हुआ, पहले से दशा सुधार पर है, क्योकि पहले चिल्लाते थे, अब चुप रहते है। कुल्ली को देखने पर उल्टा फल मालूम दिया—शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई है। ऑपरेशन के बाद से चित्त ऊबता जा रहा है। कुल्ली ने यहाँ भी कहा, डॉक्टरों को कुछ नहीं आता, मैं कहता हूँ, ढाढ़स न दीजिए, मैं चंद घंटों का मेहमान हूँ, लेकिन कहते हैं, नही, यह दिल की घबराहट है, तुम अच्छे हो जाओगे।

मैं देखता था, कुल्ली की वाणी में, मुख पर, दृष्टि में कोई दोष नही, उसकी कोई उपमा भी नहीं दी जा सकती।

इसी समय सर्जन साहब भी देखने आए। कुल्ली ने कहा—"बाबूजी, मैं बचूंगा नही, लोगो को अब मेरे ही पास रहने दीजिए, उन्हे फल और दवा के लिये दौड़ाएँ नही।"

डॉक्टर साहब ने कहा—"अगर तुम्हे यह दिव्य ज्ञान था, तो यहाँ आना ही नही था; जब आए हो, तब जैसा हम कहते है, करो। पहले तुम्हारा गला सोने पर घरघराता था, अब बंद हो गया है।"

कुल्ली ने कहा—"बाबूजी, मेरा गला नही घरघराता था, नाक बोलती थी, अब कमजोर हो गया हूँ, नही बोलती।"

"चुप रहो," डॉक्टर साहब ने कहा—'नाक बजना और गला घरघराना एक बात नही। हम खुद देख-सुन चुके है। बोलो मत।"

डॉक्टर साहब दूसरे रोगी की तरफ़ चले गए। कुल्ली सीधी-सरल दृष्टि से उन्हे देखते रहे।

दलमऊ मे मैने सुना था, जब से कुल्ली की हालत और संगीन हुई, तब से उनकी स्त्री के यहाँ एक क्षण पैर नही जमते। रायबरेली-भर मे भागी फिरती है।

मैने बात साफ़ कर लेने के लिये पूछा—"क्या दुःख से ?"

उत्तर बहुत शोभित नही मिला।

लेकिन, जब मै गया, दुर्भाग्य-वश वह वहाँ नही थी। रुपए लिए खड़ा रहा। वह सुनी बात रह-रहकर याद आती रही। अंत मे जब धैर्य जाता रहा, तब मैंने कहा—"आपकी श्रीमतीजी नहीं हैं, कुछ रुपए लाया हूँ।"

कुल्ली ने साथ गए मुसलमान सज्जन की ओर इशारा करके कहा—"इन्हे दे दीजिए। वह बेचारी तो इस-उस काम से दिन-भर मारी-मारी फिरती है।"

मैंने रुपए दे दिए। रहने के लिये कुल्ली ने पूछा—"यहाँ कहाँ रहिएगा ?"

मैंने कहा—"कुछ मदद रायबरेली से भी पहुँचाने का इंतज़ाम करूँगा। मेरे एक मित्र यहाँ ट्रेज़री-अफसर हैं। उनके बंगले में ठहरूँगा। वहीं बातचीत करूँगा।"

नमस्कार कर मैं बिदा हुआ। कुल्ली ने कहा—"अब मुलाकात न होगी।" आँखों से आँसू टपक पड़े। मैं वहाँ से बाहर निकल आया।

★

सोलह

ट्रेजरी अफ़सर से कुल्ली की मदद के लिये कहकर मैं दलमऊ चला आया। दो ही तीन रोज़ मे मालूम हुआ, कुल्ली का देहांत हो गया है ; उनकी लाश दलमऊ लाई जा रही है, दलमऊ के स्वयंसेवक अछूत और कांग्रेस कार्यकर्ता जुलूस निकालेगे। फिर नाव पर शव लेकर गंगाजी के उस पार अंतर्वेद मे जलाएँगे। दाह के लिये कुल्ली-वंश के कोई दीपक बुलाए गए हैं, उनकी स्त्री चूंकि विवाहिता नही, इसलिये उसके हाथ अतिम सस्कार न कराया जायगा। मैं स्तब्ध हो गया। कुल्ली का यह परिणाम देखकर, लेकिन साथ ही कस्बे-भर के मनुष्यों की उमड़ती हुई सहानुभूति से आश्चर्य भी हुआ। एक साधारण आदमी देखते-देखते इतना असाधारण हो गया। दु ख था, अब कुल्ली से मुलाक़ात न होगी। कुल्ली मुझे क्या समझने लगे थे, यह

लिखकर कलम को कलंकित न करूँगा। उनके जीवन पर किसकी गहरी छाप थी, यह मुझसे अधिक कोई नही जानता। कुल्ली साधारण आदमी थे, हिंदी के सुप्रसिद्ध व्यक्ति प्रेमचंदजी और 'प्रसादजी' अंतिम समय मे अपना एक-एक सत्य मुझे दे गए थे, वह मेरे ही पास रहेगा, इसलिये कि उसकी बाहर शोभा न होगी, कदर्थ होगा; उनकी महान् आत्माएँ कुंठित होंगी। ऐसा ही एक सत्य कुल्ली के पास भी था। मनुष्य अपने समझे हुए जीवन की समझ ऐसे ही परिवर्तन के समय पाता है, और देता है। कुल्ली कुछ पहले दे चके थे, इन लोगो ने बाद को दी, इसलिये कि इनमें स्पर्द्धा थी. इनसे स्पर्द्धा करनेवाला हिंदी मे न था।

दूसरे की मै नही जानता, मुझ पर एक प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जो दु:ख नही, नशे की तरह का है, जब किसी प्रियजन का वियोग होता है, या वैसा भय मुझमे आता है। कुल्ली का देहांत हो गया है, मैंने बैठके मे सुना था। कुल्ली की लाश दलमऊ पहुँची, उस समय मैं बैठके मे था, स्वयसेवक दो बार बुलाकर तीसरी बार बुलाने आया, जब जुलूस निकल रहा था, मै वही था, न जा सकने की बात कही। कुल्ली को फूँककर लोग वापस आए, मैं वही बैठा था। घर के लोग देख-देखकर लौट गए। शाम को प्रकृतिस्थ होकर भोजन किया। कुल्ली की स्त्री चिल्ला-चिल्लाकर आसमान फाड़ रही है, सुना करता था; जा नही सका। दस दिन हो गए। कुल्ली का दसवाँ समाप्त हो गया। अवश्य मुझे यह मालूम न था कि कुल्ली का दसवाँ हो गया, एकादशाह है।

एकादशाह के दिन दस बजे के करीब कुल्ली की स्त्री को देखने गया। उस समय वहाँ एक घटना हो गई थी, इसलिये कुल्ली की स्त्री में कुल्ली की अपेक्षा मुसलमानिनवाला भाव प्रबल था।

मुझसे स्वर को खींचकर कहा—"नंबरदार तो चले गए, उनका सब काम हो गया, लेकिन दस दिन तक जो लोग आए, रहे, वे आज एकादशाह को क्यों नही आएँगे ? मैं आपसे पूछती हूँ, यह हिंदुओं का खरापन है या दोगलापन ?"

बात कुछ मेरी समझ में नही आई। मैंने कहा—"भाव जरा और साफ़ करके बताइए। मैं इतने से नही समझा।"

श्रीमती कुल्ली दोनो हाथ के पजे उठाकर उपदेश की मुद्रा से बोली—"देखिए, आप तो आए नही ; नंबरदार को दाग दिया—उनके हैं कोई, मैं नहीं जानती ; अच्छा भाई, दाग दिया तो दिया; दस रोज़ माना, ठीक है; दसवें दिन पंडित और टोला-पड़ोस, गाँव-घर के सब आदमी थे, दाग देनेवाले ने मुझसे कहा, इतना तो हम कर देते है।" लेकिन साल-भर हम न मान सकेंगे, हमे काम है, फिर हमारे चाचा भी बीमार हैं—अरे हाँ, कुछ हो जाय, तो उनके भी कोई नही, इसलिये सपिंडी तुम ले लो। पडित ने भी कहा—"ठीक है, ले लो, गाँव के दस भलेमानसो ने भी कहा। मैंने कहा, अच्छी बात है, पडित जब कहते है, तब ले लें। सपिडी ले ली। अब आज होम है। पंडित को बुलाया, तो कहते है, हम न जायँगे।"

मैंने पूछा—"क्यों ?"

जो बुलाने गया था, वह एक अछूत लड़का था। उसने कहा—"मन्नी पंडित ने कहा है, एक तो यों ही हमारी बहन की शादी नहीं होती, क्योंकि हम गगापुत्रों के यहाँ पंडिताई करते हैं, कुल्ली की स्त्री के घर होम कराने जायँगे, तो कोई पानी भी न पिएगा।"

"सुन लिया आपने ?" कुल्ली की स्त्री ने कहा—"यही मन्नी पंडित कल कहते थे—सपिंडी ले लो। अगर तुम्हें काम नहीं करना था, तो तुमने कहा क्यों ? और जब कहा, तब आओगे कैसे नही ?

दस आदमी गवाह हैं—रामगुलाम पंडित, राजाराम गंगापुत्र, घोखे महाबाम्हन....."

मैंने कहा—"यह अदालत तो है नही। जो नही आना चाहता, उसे दूसरे मजबूर नही कर सकते।" मन्नी पंडित की दशा मुझे मालूम थी। वह कुलीन कान्यकुब्ज है। लेकिन उनकी बहन प्रायः बीस साल की हो गई थी, कोई ब्याह नही करता था, कारण, वह गंगापुत्रो के यहाँ यजन करते थे, उनका धान्य लेते थे। मन्नी के लिये दूसरा उपाय जीविका का न था।

मैंने कहा—"आप घबराइए नही। आपका काम हो जायगा।"

कुल्ली की स्त्री ने आश्वास की साँस ली। कहा—"अब आप ही लोग हैं!" कहकर, कृत्रिम करुणा से जैसे कंठावरोध हो गया—आँखों मे आँसू आ गए हो,—आँचल एक दफ़ा आँखों पर फेर लिया। फिर जोश मे आकर बोली—"विना आपके गए वह न आएँगे। आप ऐसे ही कहिएगा कि....."

"मैं समझ गया", मैने कहा—"मेरी वहाँ जरूरत नही। नहाकर मैं यही आता हूँ। तब तक आप एक दफा पडित को और बुला भेजे। मै अभी आता हूँ। वह न आएँगे, तो मैं हवन करा दूंगा।"

कुल्ली की स्त्री को जान पडा, साक्षात् वशिष्ठजी उनके घर जा रहे हैं।

मैं ससुराल की तरफ़ लौटा। रास्ते में ज्योतिषीजी का मकान है। यह वही ज्योतिषी हैं, जिन्होंने मेरा विवाह विचारा था; मैं मंगली था, ससुरजी इनकार कर रहे थे, लेकिन इनके पिता वहाँ के बृहस्पति थे,—राना साहब, राजा साहब, लाल साहब, सब उन्हें मानते थे, अब भी उनके लड़कों को मानते हैं—उन्होने कहा, विवाह बहुत अच्छा है, अगर लड़की को कुछ हो जायगा, तो बुरा नहीं,

फिर जहाँ लड़का मंगली है, वहाँ लडकी राक्षस है, पटरी अच्छी बैठती है। तब से इस खानदान पर मेरी एक-सी श्रद्धा चली आती है। ज्योतिषीजी मुझसे बडे है। प्रणाम कर मैंने तिथि और सवत् वग़ैरा पूछा। ज्योतिषीजी चौके। मैं किस काट और कोटि का आदमी हूँ, जानते है। पूछा "क्या करोगे ? तुम और तिथि ?"

मैंने कहा—"मन्नी पडित बहन के ब्याह के डर से कुल्ली के घर नही जाना चाहते। हवन कराऊँगा। 'मासाना मासोत्तमे' तो हर महीने आप लोग कहते हैं। सकल्प मे तिथि जान लेना ज़रूरी है।"

पडितजी ने पूछा—"हवन कैसे कराओगे ? क्या तुम यह सब जानते हो ?"

"जानता तो दरअसल कुछ नही", मैंने कहा, "लेकिन यह जानता हूँ कि हवन मे ब्रह्म मे लेकर देव-दानव, यक्ष-रक्ष, नर-किन्नर, सबमे चतुर्थी लगती है, बाद 'स्वाहा' और इतनी सस्कृत मुझे आती है कि कुल बाते अपनी रची सस्कृत मे करूँ, यहाँ के पंडितो से क्रिया शुद्ध होगी, क्या कहते हैं ?"

पडितजी ने कहा—"हाँ, यह तो है।"

"अच्छा, पचाग दीजिए।" मैंने कहा—"जल्दी है।"

पंचाग लेकर ससुराल गया। मेरे हाथ में देशी जूता देखकर सासुजी को उतना आश्चर्य न होता, जितना पंचांग देखकर हुआ। पूछा—"यह क्या है भैया ?"

"पचाग।" मैंने कहा—"चौकी और घड़ा-भर पानी रखा दीजिए, जल्दी है, नहा लूँ।"

"क्या है ?" सासुजी ने आश्चर्य से पूछा।

"मन्नी पडित कुल्ली के एकादशाह को नहीं गए, सपिडी कुल्ली की स्त्री ने ले ली है, इसलिये ; कहते हैं, एक तो यों ही गंगापुत्रों

की पुरोहिती के कारण लोग पानी पीते डरते हैं, फिर तो बहन बैठी ही रह जायगी।" पचांग रखकर मैं कपड़े उतारने लगा।

शंकित होकर सासुजी ने कहा—"तो तुम यह सब क्या जानो ?"

"मैं जानता हूँ।" मैंने कहा।

"तो तुम वहाँ पुरोहिती करने जाओगे ?"

"हाँ, और एक जोडा जनेऊ निकाल लीजिए, पहन लूं नहाकर।"

सासुजी घबराई। कहा—"बच्चा, तुम हमे मेटोगे !"

"कैसे ?" चौकी को ओर चलते हुए पूछा।

"ऐसे कि लोग हमारे यहाँ का खान-पान छोड़ेगे।"

मैंने कहा—"मै आपका ससुर हूँ या अजियाससुर ?" मेरे पापो का फल आपको क्यो भुगतना पड़ेगा, मेरा दिया हुआ पिंड-पानी जब कि आपको नही मिल सकता। आप मुझे चौके मे न खिलाइए, बस।"

सासुजी रोने लगी। मैं नहाने लगा। नहाकर जनेऊ पहना। कहा—"मैं जनेऊ नही पहनता, यहाँवाले जानते थे। तभी यहाँ का खान-पान छोड़ दिया होता। मैं ढोंगियो को जानता हूँ।"

नहाकर कपडे पहने। चलने को हुआ, तो सासुजी को जैसे होश हुआ, बोली—"खाए जाओ।"

मैंने कहा—"लौटकर खाऊँगा।"

"नही" सासुजी ने कहा—"तुम वहाँ खा लोगे ?" अपनी बहू से कहा—"गुट्टो, परस तो जल्दी।"

जल्दी-जल्दी भोजन कर मैं निकला। देखता हूँ, चारो ओर से लोगों का ताँता बँधा है—सब कुल्ली के घर जा रहे हैं। १९३७ ई० मे काफ़ी प्रसिद्ध हो चुका था, कुछ प्राचीन भी, ४० पार कर चुका था। एकादशाह कराने जा रहा हूँ, वहाँ के जीवन में सबसे बड़ा आश्चर्य था।

कुल्ली के घर मे आदमी नही अँट रहे थे। सबमें कौतूहल की दृष्टि। कुल्ली की स्त्री मे भी वैसी ही श्रद्धा। वह समझती थी, मैं कृतार्थ हो गई। लोग मुझे देखकर शर्मा-शर्माकर काना-फूसी करने लगते थे। बहुतों को यह शका थी, यह कैसे कराएँगे। मैं निश्चित था। मुख देखकर लोगो को विश्वास हो जाता था।

यथासमय मैं आँगन मे जाकर बैठा। सामने हाथ जोड़कर कुल्ली की स्त्री बैठी। लोग कोई खड़े, कोई बैठे। कोई भीतर, कोई बाहर। मैं चौक पूरने लगा। सुरबग्घी लडकपन मे बहुत खेल चुका था। वैसा ही एक चौकोर घेरा बनाया। लेकिन जानता था कि नौ कोठे नवग्रहों के बनते है, बनाए। बालू की वेदी पर हवन की लकड़ी रक्खी। घट मे स्वास्तिका बनाई। सामने गौर रक्खी। घट का दिया जलाया।

मत्र पढते वक्त बार-बार अटकता था, क्योंकि पडिताऊ स्वर नही निकल रहा था। कुछ देर सोचता रहा, व्रजभाषा-काल मे हूँ, सूरदास का सूरसागर और तुलसीदास की रामायण पढ रहा हूँ। अपने आप वैसा ही मनोमंडल बन गया। फिर क्या; अपनी सस्कृत शुरू की। संकल्प, गणेश-पूजन, गौरी-पूजन, घट की प्राण-प्रतिष्ठा करने लगा। लोग प्रभावित हो गए। खड़े जो जैसे रहे, रह गए, जैसे कवि-सम्मेलन मे कविता पढते वक्त होता है। पूजन कराकर, हवन कराने लगा, उँगली के पोरों में संख्या रख रहा हूँ। दिखाता हुआ। घी मेरे पास था, साकल्य कुल्ली की स्त्री के पास। कुछ जाने पहचाने नाम तो लिए, फिर जो जीभ के सामने आया, उसी के पीछे चतुर्थी छोडकर 'स्वाहा' कहने लगा। कह दिया था, मेरे कहने के बाद कुल्ली की स्त्री स्वाहा कहती थी। हवन मे जितनी देर लगती है, लगी। देखनेवाले अब तक पूर्ण रूप से आश्वस्त और

विश्वस्त हो गए थे। पीछे की गर्द झाड़कर उठ-उठ चलने लगे थे। कुछ सहनशील बैठे हुए थे ।

हवन पूरा हो जाने पर साल-भर ब्रह्मचर्य के साथ पति का क्रिया करते रहने की प्रतिज्ञा कराई, यहाँ भी अपनी ही संस्कृत थी—'मैं प० पथवारीदीन की धर्मपत्नी' की संस्कृत उपस्थित लोगों में प्रायः सभी समझे। सुनकर मुस्किराए। एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ी इस मुस्कान के भीतर मैंने कुल्ली की एकादशाह-क्रिया समाप्त की। यजमान को आशीर्वाद देकर सीधा भेज देने के लिये कहा, और बाहर निकला।

बाहर निकल रहा था कि आलोचना सुन पड़ी—"सब ठीक हुआ। बन गई कुल्ली की।"

खाँसकर गंभीर मुद्रा से मैं ससुराल की तरफ बढ़ा।

शाम को कुल्ली के यहाँ से सीधा आया। मैंने सासुजी से कहा—"रख लीजिए। आप लोग इसमें से कुछ न लीजिए। कल पूड़ी बना दीजिएगा।"

देखकर सासुजी ने कहा—"एक दफ़े में तुम्हारे खाए न खाया जायगा, इतना घी है।" मैं गंभीर होकर रह गया।

दूसरे दिन सबेरे, जैसी आदत थी, चिक्वे के यहाँ से गोश्त ले आया।

देखकर सासुजी ने कहा—"भैया, तुम तो आज पूड़ी खाने के लिये कहते थे।"

मैंने कहा—"कुल्ली की स्त्री पहले मुसलमानिन थी; इसलिये प्रकृति ने उनके संस्कारों के अनुसार मुझे गोश्त खाने के लिये प्रेरित किया है। इसमें दोष नहीं।"

★

कुछ पठनीय उपन्यास

राना बेनीमाधव

लेखक, अमरबहादुरसिंह 'अमरेश'। सन् १८५७ के भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के अमर सेनानी राना बेनीमाधव—जिनके स्वदेश-प्रेम, अदम्य साहस, वीरता तथा रण-कौशल की गाथाएँ आज भी जन-श्रुति, लोक-गीतों तथा लोक-गाथाओं के रूप में अवध की कोटि-कोटि जनता के कंठों में गुंजरित हो रही हैं—की वीर-गाथा उपन्यास के रूप में; ४॥)

अमृतकन्या

लेखक, श्री अज्ञात एम्० ए०। भारत-विभाजन के साथ देश में फैली अराजकता, तत्कालीन मानव के राक्षसी रूप का चित्रण। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरस्कृत ; ५)

गढ़-कुंडार

लेखक, वृंदावनलाल वर्मा। इतिहास के गर्त से उभरी हुई, साहस, शौर्य और स्वाभाविक प्रेम की अद्भुत कथा। 'नागरी-प्रचारिणी-सभा' द्वारा पुरस्कृत ; ७)

बिराटा की पद्मिनी

लेखक, वृंदावनलाल वर्मा। नारी के अदम्य त्याग, साहस और प्रेम की रोचक कथा। वर्माजी का सर्व-प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास ; ६)

चंद्रगुप्त मौर्य

लेखक, मिश्रबंधु। मौर्य-वंशी सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य की जीवन-गाथा, खोज-पूर्ण ऐतिहासिक तत्त्वों के साथ ; ३।।)

पुष्यमित्र

लेखक, मिश्रबंधु। साहस और शौर्य की प्रतिमूर्ति, शुंग-वंश के संस्थापक सम्राट् पुष्यमित्र की जीवन-गाथा ; ५)

स्वतंत्र भारत

लेखक, मिश्रबंधु। स्वतंत्रता-प्राप्ति पर देश में फैली अराजकता, शासक वर्ग की कठिनाइयाँ तथा उनके निवारण का सरल क्रमानुसार वर्णन; ५)

अमिताभ

लेखक, गोविंदवल्लभ पंत। अमित आभा-युक्त भगवान गौतम बुद्ध की जीवन-गाथा रोचक उपन्यास के रूप में ; ५।।)

नूरजहाँ

लेखक, गोविंदवल्लभ पंत। मुगल-सम्राज्ञी, नूरजहाँ की रोचक प्रणय-कथा के साथ उसकी दूरदर्शिता, साहस और रण-कौशल का अपूर्व चित्रण ; ५)

भीष्म-प्रतिज्ञा

महावीर, ब्रह्मचारी भीष्म के अपूर्व त्याग, उनकी कर्तव्यनिष्ठा और शौर्य की गौरव-गाथा ; २।।)

[अन्यान्य पुस्तकों के लिये सूचीपत्र मँगाइए।]

गंगा-ग्रंथागार, ३६, गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ